॥ श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः ॥

❀ श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ❀

श्रीवृन्दाबन-महिमामृतम्

तृतीय-चतुर्थ शतक

(हिन्दी अनुवाद सहित)

एवं तत्कवि

श्रीश्रीगौरभगवत्-प्रियपार्षद

श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद

का

* जीवन-चरित्र *

सङ्कलनकर्त्ता—

श्रीश्यामलाल हकीम,

श्रीधाम वृन्दाबन । न्यौ० ॥=)

नम्र-निवेदन !

कलियुगपावनावतार श्रीश्रीगौरसुन्दर की अपार करुणा से महामहिममय रसकाव्य "श्रीवृन्दावन महिमामृत" अन्तर्गत तृतीय तथा चतुर्थ शतक श्रीवृन्दावन-रस-रसिक पाठकवृन्द के हस्तकमलों में सादर समर्पित हैं। पूर्ण आशा है कि पहले दो शतकों की भांति इन्हें भी पाठकवृन्द अपने उदार हृदय में स्थान देकर श्रीवृन्दावन के अचिन्त्य सौन्दर्य-माधुर्य का अपूर्व आस्वादन करते हुए श्रीवृन्दावन-बिहारी मनहारी केलिसिन्धु श्रीश्रीयुगलकिशोर की नित्यनिकुञ्जलीला की स्फूर्ति लाभ करेंगे।

प्रथम दो शतकों के भाषा-माधुर्य, भाव-प्राचुर्य एवं वर्णना-सौन्दर्य का अनुभव कर अनेक पाठकों ने "श्रीवृन्दावन-महिमामृत" रसीले-काव्य के महाकवि श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद की जीवन-छवि अवलोकन करने की उत्कट इच्छा प्रगट की थी। अतः प्रस्तुत दो शतकों के साथ परमपूज्यनीय सरस्वतीपाद के विस्तृत जीवन-दृश्यों को अनेक ग्रन्थों से संग्रह कर दास ने पाठकवृन्दों के सामने रखने का प्रयास किया है।

श्रीसरस्वतीपाद के जीवन-चरित्र में करुणावतार भगवन् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के जगत्पावन लीला-गुण-माधुर्य का आस्वादन भी पाठकवृन्द के लिये विशेष अह्लादप्रद है।

माघ, कृष्णपक्ष एकादशी
सं० २०१०—जन० १९५४

भक्त-पद-रजप्रार्थी—
श्यामलाल हकीम,
श्रीधाम वृन्दावन।

मुद्रक—श्रीदानबिहारीलाल शर्मा, विद्यालय प्रेस, श्रीवृन्दावन।

परमाभिवन्दनीय

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद

का

❋ जीवन-चरित्र ❋

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद का जन्म एक श्रेष्ठ विशिष्ट ब्राह्मण-कुल में हुआ। इनके पिता पितामह आन्ध्र-उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। वे श्रीसम्प्रदायी वैष्णव थे। उस समय केवल श्रीरङ्ग-क्षेत्र ही श्री वैष्णव-सेवित तीर्थ था। अपने गांवमें भजनोचित सुविधा न देखकर वे रङ्ग-क्षेत्र (मैसूर प्रदेश) में कावेरी नदी के किनारे बेलङ्गूरी गांव में सपरिवार निवास करने लगे थे। श्री सरस्वतीपाद के दो भ्राता और भी थे। ज्येष्ठ भ्राता का नाम श्रीवैङ्कट भट्ट तथा मध्यम भ्राता का नाम श्रीत्रिमल्ल भट्ट था। यह भट्ट परिवार श्रीलक्ष्मीनारायण का अनन्य उपासक था। श्रीवैङ्कट भट्ट, यतीन्द्र श्री नृसिंहदेव के कृपापात्र थे और सुविख्यात विद्वान एवं सर्वशास्त्र-तत्वज्ञ थे।

श्रीवैङ्कट भट्ट के सुपुत्र श्रीगोपाल भट्ट थे। वह बाल्यकाल में अति निपुण एवं सुतीक्ष्ण-बुद्धि थे। तदनन्तर श्रीमन्महाप्रभु की अशेष कृपा प्राप्त कर षड़-गोस्वामीपादों में सुविख्यात एक आचार्य माने गये। उन्होंने ही वैष्णव-स्मृति—"श्रीहरिभक्ति विलास" ग्रंथ का अपूर्व सङ्कलन किया।

कलियुग-पावनावतार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु तीर्थयात्रा के छल से जब सं० १५६७–६८ में दाक्षिणात्य में प्रेम-भक्ति वितरण

कर रहे थे, श्रीवैङ्कट भट्ट ने श्रीमहाप्रभु को अपने गृह में चातुर्मास्य विश्राम करने के लिये आग्रहपूर्वक प्रार्थना की। प्रभु ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की। श्रीमहाप्रभुके असमोर्द्ध प्रभावको देखकर भट्ट परिवार उनके चरणाश्रित होगया तथा श्रीकृष्णरसमें लोलुप हो उठा।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद बाल्यकाल में सुतीक्ष्ण प्रतिभाशाली थे। अल्पवयस में ही ये अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर सुप्रसिद्ध विद्वान होगये। ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश किये बिना संसार की असारता का कटु अनुभव कर इन्होंने तीव्र वैराग्यपूर्वक सन्न्यास ग्रहण कर लिया। इनके सन्न्यासाश्रम का नाम था— श्रीप्रकाशानन्द। ये गृह-सम्पति को त्याग कर तीर्थयात्रा के लिये चल दिये। भारतवर्ष के समस्त तीर्थों में पर्य्यटन करते हुए काशी में आये। ये केवल कौपीन धारण करते, पृथ्वी पर शयन एवं जीवन-रक्षाके निमित्त नाममात्र आहार करते थे। ये निशिदिन वेद-चर्चा एवं शास्त्रचर्चा में ही संलग्न रहते। इनकी असाधारण विद्वत्ता, शास्त्र तत्वज्ञता तथा वैराग्य की पराकाष्ठा देख सुन कर देशदेशान्तर से असंख्य विद्यार्थी इनके निकट आकर इनके पदाश्रित हो विद्या लाभ करने लगे। वेदान्त, तर्क, सांख्य, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा, पुराण-इतिहास तथा अलङ्कार, काव्य-नाटकादि के रहस्य एवं सिद्धान्त विषये इनकी अनर्गल व्याख्या सुनकर काशी वासी समस्त संन्यासी समाज इन के गुण-मुग्ध होगया। थोड़े ही समय में "सरस्वती" पद प्राप्त कर जगत् विख्यात होगये। काशी में श्रीबिन्दुमाधव हरि-मन्दिर के निकट इनका मठ था।

उस समय में जो व्यक्ति संन्यास ग्रहण करते थे, वे प्राय समस्त ही मायावादी होते थे। श्रीमत् शङ्कराचार्यकृत मायावादमूलक वेदान्तभाष्य ही उनका नित्यपाठ होता था। संन्यासी को देखते ही सब लोग यही जानते थे कि "यह मायावादी है।" "कोई संन्यास

लेकर भक्तिधर्म का अनुष्ठान करसकता है, किंवा मायावादको छोड़ कर किसी और मतका अवलम्बन भी कर सकता है"—ऐसी धारणा उससमय नहीं थी। श्रीप्रकाशानन्दपाद भी उन्हीं मायावादी संन्यासी समाजके प्रधान थे। ये अद्वैतवादके आचार्य श्रीमत् शङ्कराचार्य के मतानुयायी थे। इनका मत था कि जीव और ब्रह्म में अभेद है, केवल मायाप्रभावसे भेद प्रतीत होता है। दृश्यमान जगत् सब मिथ्या है, इसका कुछ अस्तित्व नहीं है। ब्रह्म के बिना कहीं भी अन्य कोई भी वस्तु नहीं है और न रह सकती है। माया-प्रभाव से विभिन्न वस्तुओं की पृथक सत्ता का ज्ञान जीव के मन में हो रहा है। माया बन्धन निवृत होने पर ही संसार के मिथ्यत्व का अनुभव होता है एवं जीव तभी जान सकता है कि—समस्त ब्रह्म ही है, जीव की ब्रह्म के साथ अभिन्नता है। इस प्रकार ज्ञान-योगमार्ग से निर्विशेष निराकार ब्रह्म के चिन्तनपूर्वक जीव-ब्रह्मैक्य ज्ञान (सायुज्यमुक्ति) ही इनका साध्यतत्व था। उस समय प्रायः समस्त जगत् में इसी मायावाद का बोलबाला था एवं इसे ही वेदान्त समझा जाता था।

इसी समय प्रेम-प्रदाता श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु भी जगदोद्धार निमित संन्यास ग्रहण कर नीलाचल आ चुके थे। पहले यह कहा जा चुका है कि श्रीमहाप्रभु जब नीलाचल से दक्षिण में पधारे, इन के दोनों भ्राता एवं इनके भ्रातुष्पुत्र श्रीगोपालभट्ट श्रीमहाप्रभु के पदाश्रित होगये, तथा श्रीकृष्ण-प्रेम में उन्मत्त हो उठे।

सरस्वतीपाद उस समय भारतवर्ष के अद्वितीय मायावादी संन्यासी थे। किन्तु, यदि ये संसार को त्याग कर एवं समस्त वासनाओं को जलाञ्जलि देकर कठोररूप से जीवन यापन कर रहे थे, तो भी ये अपनी इन्द्रियों पर पूर्णतया अधिकार न पा सके थे। सांसारिक समस्त सुख-सम्पति त्याग कर चुके थे, ठीक है; किन्तु दम्भ, ईर्षा-मात्सर्य आदिका अङ्कुर अभी इनके हृदयमेंविद्यमान था।

जब सरस्वतीपाद ने यह बात सुनी कि इनके भ्राता किसी एक भावक संन्यासी को देखकर मुग्ध हो गए हैं एवं इनका असाधारण प्रतिभाशाली एक भ्रातुष्पुत्र गोपाल भट्ट भी जिसे ये अवश्य ज्ञानमार्ग में ही प्रवृत कराते, उस संन्यासी को आत्म समर्पण कर चुका है—ये अति दुखित एवं क्रोधित हुए। अपने को अत्यन्त अपमानित मान कर सोचने लगे—"भारतवर्ष में मुझ से भी बढ़ कर कोई और संन्यासी है ? वह कौन है—जिसने मेरे परिवार को विपथ पर डालने का साहस किया है ?

वस्तुतः श्रीसरस्वतीपाद को उस समय भक्ति अनुष्ठान से अति घृणा थी। ये कहते थे—"भावकों का मत स्त्रियों का धर्म है। पुरुष होकर रोना ! इससे तो मर जाना अच्छा है। भक्ति कैसी ? और किस की भक्ति ? अज्ञानी और दुर्बल लोगों ने एक भगवान् कल्पित कर रखा है। जीव तो स्वयं ब्रह्म है।"

वह संन्यासी है कौन ?—यह अनुसन्धान करने पर इन्हें पता लगा कि वह नीलाचल में वास करता है। तीर्थ दर्शन करते हुए दक्षिण में जा पहुँचा एवं इनके परिवार को श्रीकृष्णनाम में पागल कर आया है। छोटी तो वयस है उसकी, देखने में बड़ा सुन्दर, स्वर्णवत् पीतवर्ण, आजानुलम्बित प्रकाण्ड उसका शरीर है। जब इन्होंने यह सुना कि इनके परिवार ने तो उसे स्वयं श्रीकृष्ण जान लिया है और उसके साथ सब नाचते गाते हैं—"सर्वनाश।" कह कर अवाक रह गये। विशेष जांच करने पर इन को पता लगा कि वह संन्यासी नवद्वीप का एक ब्राह्मण है, श्रीकेशवभारती का शिष्य है एवं उसका नाम है—कृष्णचैतन्य।

काशी में जैसे श्रीप्रकाशानन्द सर्वप्रधान थे, नीलाचल में इसी प्रकार श्रीवासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य सर्वोपरि विराजमान थे। नवद्वीप ही उन्हीं दिनों न्याय-चर्चा में प्रसिद्ध एवं विद्या का

केन्द्र था। श्रीसार्वभौमपाद नवद्वीप के सर्वप्रधान पण्डित एवं नैयायिक थे। उड़ीसा के राजा श्रीप्रतापरुद्र उन्हें आदरपूर्वक अपने देश में ले आये थे। श्रीसार्वभौमपाद के निकट भारतवर्ष के सब देशों से अनेक शिष्य शिक्षार्थ आते थे। वेदान्तिक दण्डी संन्यासी समुदाय को भी वे वेदाध्ययन कराते थे। इसलिये श्रीप्रकाशानन्द एवं श्रीसार्वभौम की परस्पर अच्छी जान पहचान थी।

कुछदिन पीछे श्रीसरस्वतीपाद ने सुना कि उस महाप्रतापी सार्वभौम भट्टाचार्य पर भी उस कृष्णचैतन्य संन्यासी का रङ्ग चढ़ गया है, और तो क्या सार्वभौम ने भी उसे स्वयं श्रीकृष्ण ही निरधारण कर लिया है और उसके साथ नृत्यगान करता है। सार्वभौम जैसे महानव्यक्ति के इस प्रकार परिवर्तन को सुन कर भी इनकी वृत्ति तो न बदली, अपितु भट्टाचार्य से ही घृणा होगई। ये कहने लगे "वह भावक संन्यासी अवश्य कोई इन्द्रजाली है, जिसने सार्वभौम जैसे महाविद्वान को भी मूर्ख बना डाला है। ठीक है! सार्वभौम को उस नदिया के मूर्ख संन्यासी ने अपने नृत्य-सङ्गीत एवं रूप सौन्दर्य से मुग्ध कर लिया है; किन्तु प्रकाशानन्द इन प्राकृत गुणों के इन्द्रजाल में फंसने वाला नहीं है।" मन ही मन क्रोधित हो एक दिन सरस्वतीपाद ने श्रीमहाप्रभु को शासन करने के लिये नीलाचल के एक यात्री के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु को निम्न श्लोक लिख भेजाः—

यत्रास्ते मणिकर्णिका- मलहरा स्वदीर्घिका दीर्घिका
रत्नन्तारक मोक्षदं तनुमुतेशम्भूः स्वयं यच्छती।
एतदतत्त्वतद्भुतधामतः सुरपुरो निर्वाणमार्गस्थितं
मूढ़ोऽन्यत्र मरीचिकासु पशुवत् प्रत्याशया धावति॥

अर्थात्—जहां मणिकर्णिका एवं मन्दाकिनी दीर्घिका विद्यमान हैं, तथा जिस स्थान पर स्वयं महादेव तारक मोक्षप्रद

देवगणों से भी ऊंचे निर्वाण पथस्थित रत्न को प्रदान करते हैं, मूर्ख उस प्रकृत-रत्न को त्यागकर—पशु जैसे मरुस्थल में धावित होते हैं, उसी प्रकार अन्यत्र धावित होता है।

श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीप्रकाशानन्द का नाम सुन कर पत्र को आदर पूर्वक ग्रहण किया—किन्तु श्लोक पढ़ कर कुछ हर्ष नहीं हुआ। श्रीसरस्वतीपाद के सन्मान निमित्त प्रभु ने उसी यात्री के हाथ उत्तर-स्वरूप में यह श्लोक लिख भेजाः—

घर्माम्भोमणिकर्णिका भगवतः पादाम्बुभागीरथी
काशीनांपतिरर्द्धमेव भजते श्रीविश्वनाथ स्वयं।
एतस्यैवहि नाम शम्भुनगरे निस्तारकं तारकं
तस्मात् कृष्णपदाम्बुजं भज सखे श्रीपाद निर्वाणदम्॥

अर्थात—मणिकर्णिका श्रीभगवान् का स्वेद-जल है एवं गङ्गा श्रीभगवान् का चरण-जल है; काशीपति स्वयं श्रीविश्वनाथ इस में विलीन होकर भजन करते हैं इसीलिये वाराणसी नगर का नाम निस्तार-तारक है। अतएव हे सखे! श्रीकृष्ण के मुक्तिप्रदाता चरण कमलों का भजन कर।

सरस्वतीपाद इस श्लोक को पढ़ कर चिढ़ उठे। अनेक प्रकार के स्निग्ध पकान्न भोजन करना संन्यासाश्रम के विरुद्ध है, किन्तु श्रीजगन्नाथ जी के प्रसादी इस प्रकार के अनेक व्यञ्जन श्रीमन्महाप्रभु भगवत्-प्रसाद बुद्धि से ग्रहण कर लेते थे—प्रसाद की अपेक्षा कभी न करते थे। अतः श्रीजगन्नाथ जी के प्रसाद को ही लक्ष्य कर श्रीमहाप्रभु को गाली देते हुए इन्होंने फिर यह श्लोक लिख भेजाः—विश्वमित्रपराशरप्रभृत्यो वाताम्बुपर्णाशिन

एते स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्टैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवद्विन्दुस्तरेत् सागरम्॥

अर्थात—विश्वामित्र, पराशर आदि मुनिगण वायु, जल, पत्र मात्र खाकर भी मनोहर स्त्री मुख को देख कर मोह को प्राप्त हो गये, जो व्यक्ति घी-दधि-दूध युक्त शाल्य अन्न को भोजन करते हैं, वे यदि इन्द्रिय-निग्रह कर सकें, तो चटक पक्षी भी समुद्र को लांघ सकता है।

इस श्लोक को पढ़ कर श्रीमन्महाप्रभु ने निष्प्रयोजन जान इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया; किन्तु भक्तगण क्या चुप रह सकते थे ? प्रभु से गोपन कर इस श्लोक का उत्तर लिख भेजा: —

सिंहोबली द्विरदशूकरमांसभोगी
संवत्सरेण कुरुते रतिमेकवारम् ।
पारावत स्तृणशिलाकणमात्रभोगी
कामीभवेदनु दिनं वद कोऽत्र हेतुः ॥

अर्थात—बलवान सिंह हाथी-शूकर आदि का मांस भक्षण कर वर्ष में एक बार क्रीड़ा करता है; कपोत शिला-कण मात्र खाकर ही प्रतिदिन रति करता है—कहिये इसका क्या कारण ?

श्रीसार्वभौमपाद श्रीप्रकाशानन्द के गालीपूर्ण पत्र को देख कर अति क्रोधित हुए और श्रीमहाप्रभु से अनुमति लेकर काशी में आकर इन का उद्धार करना चाहा; किन्तु प्रभु ने उस समय निषेध कर दिया।

सम्वत् १५७० में श्रीमहाप्रभु सर्वत्र प्रेम-वन्या प्रवाहित करते हुए झारीखण्ड के मार्ग से श्रीवृन्दावन की यात्रा करते समय काशी में पधारे। श्रीतपन मिश्र एवं श्रीचन्द्रशेखर जो पहले ही से गौरगत-प्राण थे, काशी में निवास कर रहे थे। प्रभु की इच्छा न थी, तो भी इन दोनों भक्तों के आग्रहवश प्रभु ने काशी में कुछदिन निवास किया। काशी में एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण रहता था, जो हर प्रकार से सम्पन्न व्यक्ति था। सरस्वतीपाद के चरणों में उसकी

पूर्णभक्ति थी। किन्तु जब उसने श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन किये वह प्रभु का ही होगया। सरस्वतीपाद एकदिन जब शिष्यों को वेदान्त पढ़ा रहे थे, उसी सभा में उस ब्राह्मण ने आकर इनके सामने महाप्रभु के रूप-माधुर्य एवं नामसङ्कीर्तन तथा अश्रु-पुलकादि अलौकिक भाव विकारों का वर्णन किया। सरस्वतीपाद उपहास कर प्रभु की निन्दा करने लगे—"हां! मैंने भी सुना है—चैतन्य नाम का भावक संन्यासी! वह तो नाममात्र का संन्यासी है, महा इन्द्रजाली है, मूर्ख है, उसे तो अपने धर्म का भी ज्ञान नहीं। देशदेशान्तर नाचता फिरता है। इसीने ही तो सार्वभौम को पागल बनाडाला है। किन्तु काशीमें इसकी भाव-कालिमा नहीं बिकेगी।"

इस प्रकार प्रभु की निन्दा सुनकर उस ब्राह्मण को अतिदुख हुआ और वहां से उठकर श्रीमहाप्रभु के निकट आया। महाप्रभु को सब वृतान्त कह सुनाया, कहने लगा—"प्रभो! प्रकाशानन्द आपके नाम से पहले भी परिचित है; और मैंने भी आप का नाम उसके सामने कई वार कहा, किन्तु बड़ा आश्चर्य है, कि वह आप का पूरा नाम भी उच्चारण न करसका—केवल "चैतन्य" "चैतन्य" ही कह सका।" यह सुनकर श्रीमहाप्रभु मुस्काकर बोले:—

प्रभु कहे—मायावादी कृष्ण अपराधी।
'ब्रह्म, आत्मा चैतन्य" कहे निरवधि॥
अतएव तार मुखे न आइसे "कृष्णनाम"।
कृष्णनाम, कृष्ण स्वरूप-दुइ तो समान॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत २-१७-१२५,१२६)

जो मायावादी है वह श्रीकृष्ण के प्रति अपराध करता है। "ब्रह्म, आत्मा, चैतन्य" वह सदा उच्चारण करता है। श्रीकृष्ण-स्वरूप तथा श्रीकृष्णनाम अभिन्न हैं। कृष्ण-अपराधी होने से उसका श्रीकृष्णनाम के प्रति भी अपराध होता है अतः उसकी जिह्वा पर

श्रीकृष्णनाम नहीं आता"—इस प्रकार प्रभु ने ब्राह्मण के प्रति नाम एवं नामी के अभिन्नत्व को स्थापन करते हुए नाम का भी स्वयं प्रकाशत्व वर्णन किया। श्रीमन्महाप्रभु कुछ दिन काशी में निवास कर श्रीवृन्दाबन की ओर चल दिये।

श्रीसरस्वतीपाद ने जब यह सुना कि महाप्रभु काशी से चले गये हैं तो ये अति प्रसन्न हुए एवं कहने लगे—"मैंने जो कहा था, वही सत्य हुआ। वह चैतन्य डर के मारे मेरे निकट ही नहीं आ सका। मेरा विश्वास है कि वह फिर काशी में आयेगा ही नहीं।" यदि कोई श्रीमहाप्रभु के लौटआने का संवाद देता तो ये कह उठते—"आयगा तो क्या? मेरे निकट नहीं आसकता। तुम लोग भी उस के पास मत जाना—वह बड़ा शक्तिशाली है, तुम्हें मुग्ध करलेगा। जो उसके मत का पालन करेगा, उसका लोक परलोक सब नष्ट हो जायगा।" इसप्रकार सरस्वतीपाद एवं इनके अनुयायी श्रीमहाप्रभुकी घोर निन्दा करते। इस निन्दाको सुनकर गौरभक्तोंके प्राण रोउठते।

श्रीमन्महाप्रभु नीलाचल लौटते समय फिर काशी में पधारे एवं श्रीतपन मिश्र के घर निवास किया। समय पाकर श्रीतपनमिश्र, श्रीचन्द्रशेखर आदि भक्तगण अपना दुख प्रभु को निवेदन करते—"हे प्रभो! और कबतक हम आप की निन्दा सुनेंगे? अब हम से नहीं रहा जाता। समस्त संन्यासी आप की निन्दा करते हैं। हे भगवन्! हमारे हृदय विदीर्ण होते हैं, कृपा कर उनका उद्धार कीजिये।" प्रभु सुन कर हंस देते, कुछ नहीं बोलते।

वह महाराष्ट्रीय ब्राह्मण भी बेचैन था कि किसी प्रकार श्रीप्रकाशानन्द भी श्रीमहाप्रभु के अनुगत हो जाये। सोचने लगा—"प्रकाशानन्द सरल चित्त साधू है, महाप्रभु की निन्दा करता है, इसका केवल कारण यही है कि प्रभु को उसने कभी देखा ही नहीं। हां! यदि एकबार भी इस गौर-कृष्ण की रूप छटा देख सके तो

सरस्वती की समस्त कुमति नष्ट होजाये।" इस प्रकार चिन्तित हो कर प्रभु भक्तों से मिलकर उसने एक परामर्श किया कि वह श्री प्रकाशानन्द को दश सहस्र शिष्यों सहित अपने घर पर निमन्त्रण देगा एवं फिर प्रभु को भी अनुरोध पूर्वक वहां पदारोपण करने की प्रार्थना करेगा। सर्वसम्मति से उस ब्राह्मण ने उसी प्रकार किया एवं तदर्थ प्रकाण्ड आयोजन किया। तत्पश्चात सभी प्रभु भक्त मिल कर महाप्रभु के निकट आये एवं उस ब्राह्मण ने प्रभु के चरण पकड़ कर प्रार्थना की—"हे प्रभो! हम जानते हैं कि आप संन्यासी समाज में गमन नहीं करते, किन्तु आपको मेरा घर पवित्र करना ही होगा।" प्रभु सर्वज्ञ हैं, भक्तों के मन की जान गये कि ये सब संन्यासी समुदाय का उद्धार चाहते हैं। प्रभु ने हंसते हुए कहा—"जैसे आप की अभिरुचि।"—यह सुनकर सब ने आनन्दपूर्वक हरि ध्वनि की।

सरस्वतीपाद ने एवं सब संन्यासी समुदाय ने भी यह बात सुनी कि श्रीकृष्ण चैतन्य भी निमन्त्रण में आयेंगे। अन्यान्य संन्यासीगण तो कौतूहलाक्रान्त हो उठे, किन्तु श्रीप्रकाशानन्द सम्भवतः कुछ चिन्तालीन हो गये-"वह चैतन्य जिसकी मैंने अनेक बार निन्दा की, क्या वह आज दशहज़ार संन्यासी समाज में अपनी इच्छा से आयेगा? इसमें कुछ मर्म है!! क्या वह सार्वभौम की तरह मुझे भी मुग्ध कर लेगा?"

निर्धारित समय पर संन्यासीगण सभा में आगये एवं प्रभु की प्रतीक्षा करने लगे। आज वे देखेंगे, जिसको लोग स्वयंभगवान् मान कर पूजा करते हैं—वह संन्यासी कैसा है! उसी समय श्रीमन्महाप्रभु भी श्रीतपनमिश्र, श्रीचन्द्रशेखर, श्रीसनातन एवं परमानन्द के साथ धीरे धीरे नाम जप करते करते पहुँचे। महाज्योतिर्मय कोटि सूर्याभास आजानुलम्बित विशाल विग्रह, प्रसन्नवदन, उन्नत ललाट

कमल के समान नेत्र, अति मन्थर गति से श्रीमहाप्रभु को आते देख सब संन्यासीगण आकृष्ट हो आसन छोड़कर उठ खड़े हुए। श्रीमन्महाप्रभु ने सब को नमस्कार किया। प्रभु ने पाद प्रक्षालन किया एवं उसी स्थान पर ही अपना ऐश्वर्य प्रकाश करते हुए बैठ गये। प्रभु-मुख का दर्शन करते ही सरस्वतीपाद की चिरकालीन शत्रुता उसी क्षण विलुप्तप्राय होगई। प्रभु के ऐश्वर्य को देखकर वे अपने को स्थिर न रख सके, उठ कर सन्मान पूर्वक प्रभु को बुलाने लगे—"श्रीपाद ! यहां आइये ! सभा में ही आइये !! वहां अपवित्र स्थान पर क्यों ? आपको किस बात का दुख है ?"

श्रीमहाप्रभु—"मैंने तो हीन (भारती) सम्प्रदाय में संन्यास ग्रहण किया है, आप उत्तम सम्प्रदाय के संन्यासी हैं। मैं आपकी सभा में बैठने योग्य नहीं हूँ।" यह सुन कर सरस्वतीपाद प्रभु का हाथ पकड़ कर उन्हें श्रद्धा-सम्मानपूर्वक सभा में ले आये। पूछने लगे—"आपका नाम श्रीकृष्ण चैतन्य है ? केशव भारती के शिष्य हो ? आप धन्य हो। आप तो सम्प्रदायी संन्यासी हैं—आप यहां काशी में रहो। हम से दूर दूर रहने का क्या कारण ? संन्यासी हो कर नृत्य गान एवं भावकों के साथ सङ्कीर्तन करते फिरते हो—ऐसा क्यों ? संन्यासी का धर्म तो ध्यान एवं वेदान्त पाठ करना है। आप सामान्य मनुष्य नहीं हो—आप तो साक्षात नारायण जान पड़ते हो—फिर ऐसा हीन आचरण क्यों ?" "सुनो श्रीपाद ! सब कहता हूँ।"—श्रीमहाप्रभु ने कहा—'आप जानते हैं मैं मूर्ख हूँ—और ऐसा ही जान कर मेरे गुरुदेव ने मेरे लिये वेदान्तपाठ पढ़ना सम्भव नहीं समझा। उन्होंने मेरा वेदांत में अधिकार न देखकर मुझे कृष्णमंत्र ही सदा जपने की आज्ञा दी। और कहा—'चैतन्य ! श्रीकृष्ण मंत्र से तेरा संसार मोचन होगा एवं श्रीकृष्णनाम से ही श्रीकृष्णचरण प्राप्ति होगी।' गुरुदेव ने कहा—'कलिकाल में नाम के

बिना और कोई धर्म नहीं है। सब मंत्रों का सार श्रीकृष्णनाम है—सब शास्त्र का मर्म श्रीकृष्णनाम है।" प्रभु बोले—"सरस्वतीपाद ! श्रीगुरुदेव ने मुझे एक श्लोक की भी शिक्षा दी जिसे मैंने बड़ी कठिनाई से कण्ठस्थ किया। वह भी आपको सुनाता हूँ। यथाः—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

अर्थात—कलियुग में केवल हरिनाम ही गति है और गति नहीं है; केवल हरिनाम ही गति है, और गति नहीं है; केवल हरिनाम ही गति है और गति नहीं है।"

(विशद आलोचना श्रीमद्वैष्णव-सिद्धांत-रत्न संग्रह नामक ग्रंथ के "नाम माहात्म्य" प्रबन्ध में पृष्ठ २८६ पर द्रष्टव्य है।)

श्रीगौराङ्ग ने फिर कहा—"मैं गुरुदेव की आज्ञा पाकर अनुक्षण नाम जपने लगा। जपते जपते मेरा मन भ्रांत होगया; उन्मत्त हो उठा। महोन्मत्त की भांति कभी रोने, कभी हँसने, कभी नाचने-गाने लगा। मैं चिन्ता करने लगा कि क्या मैं सचमुच पागल होगया हूँ ? अधीर होकर गुरुचरणों में निवेदन किया–हे गुरुदेव ! आपने यह कैसा मंत्र दिया ? इसकी कैसी शक्ति ? जपते जपते इस मंत्र ने तो मुझे पागल कर दिया।" श्रीमहाप्रभु बोले—"सुनिये श्रीसरस्वतीपाद ! मेरे गुरुदेव मेरी बात सुन कर हंस पड़े और कहने लगे:—

कृष्ण नाम महामन्त्रेर एइतें प्रभाव।
येई जपे, तार कृष्णे उपजये भाव॥
कृष्ण विषयक प्रेमा—परम पुरुषार्थ।
यार आगे तृण तुल्य चारि पुरुषार्थ॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत १–७–८०,८१)

वत्स ! श्रीकृष्णनाम सङ्कीर्तन का यही प्रभाव है कि जो भी श्रीकृष्णनाम का जप करता है उसके चित्त में श्रीकृष्ण-प्रेम का

आविर्भाव होता है। श्रीकृष्ण विषयक प्रेम ही (जीव का) परम पुरुषार्थ है। जिस को प्राप्त करलेने पर धर्म,अर्थ, काम एवं मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ भी तृणके समान नितान्त तुच्छ प्रतीयमान होते हैं।

और गुरुदेव ने यह भी कहा कि गौराङ्ग ! ब्रह्मानन्द जिस पञ्चम पुरुषार्थ—प्रेमानन्दामृत-सिन्धु के एक विन्दु के समान भी नहीं है, वह श्रीकृष्णनाम का मुख्य फल "प्रेम" तुम्हें प्राप्त हुआ है, अतः मैं भी आज कृतार्थ हो गया।"

श्रीमहाप्रभु बोले—"सरस्वतीपाद ! यह श्लोक भी जो श्री भागवत् का सार है, श्रीगुरुदेव ने सुनाया यथाः—(११-२-४०)

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौतिगायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकवाह्यः॥

अर्थात्—इस प्रकार जो नियम से भक्ति अङ्गों का अनुष्ठान करता है, वह स्वीय प्रिय श्रीहरिनाम-संकीर्त्तन करते करते प्रेम से विगलित हृदय एवं मानापमान विषये अवधानशून्य होकर उन्मत्त व्यक्ति की भांति उच्चस्वर से कभी हंसने, चीत्कार करने, कभी गान और कभी नृत्य करने लगता है।

अतएव श्रीपाद ! श्रीगुरुदेव के वाक्यों में दृढ़ विश्वासपूर्वक मैं निरंतर श्रीकृष्णनाम सङ्कीर्तन करता हूँ एवं वही श्रीकृष्णनाम ही मुझे कभी नृत्य कराता कभी गान कराता है। मैं अपनी इच्छा से नहीं नाचता-गाता।"

सरस्वतीपाद ने जब अपने प्रश्नों का उत्तर क्रमशः प्रभु की मधुर वाणी से सुना तो उनका चित्त कुछ कुछ आकृष्ट होने लगा। फिर भी अभिमान पूर्वक सोचने लगे—"यह युवक महान व्यक्ति है। अति मधुरभाषी है, सुबोध है किन्तु हां ! यदि कुछ दिन मेरे पास रहे तो एक अपूर्व विभूति बन जायगा। श्रीकृष्णप्रेम इसे प्राप्त हुआ है—सो तो ठीक है, किन्तु वेदान्त के

प्रति इसकी रुचि नहीं है यह महान दोष है।" ऐसा विचार कर सरस्वतीपाद बोले—"चैतन्य ! तुमने जो कहा, सब सत्य है। किसी भाग्यवान को ही प्रेम की प्राप्ति होती है। श्रीकृष्णनाम-सङ्कीर्तन से हमें संतोष है, किन्तु तुम वेदांत भी तो सुनो।"

यह सुनकर श्रीमहाप्रभु बोले—"श्रीपाद ! जो आप पूछते हैं यदि मैं उसका उत्तर न दूं तो अपराध होगा। और यदि कुछ कहूँ और आप दुख मान बैठें ? हां ! यदि आप दुख न मानें तो कुछ निवेदन करूं।" सरस्वतीपाद बोले—"ओहो ! यह आप क्या कहते हैं ? आपकी वचन माधुरी से, आपकी रूपमाधुरी से हमारे श्रवण एवं नेत्र अमृतवत् शीतल होरहे हैं—आप तो साक्षात् नारायण मूर्ति हैं। आप स्वच्छन्द कहिये—दुख कैसा ?"

महाप्रभु बोले—"सरस्वतीपाद ! वेदांत सूत्र ईश्वर के वचन हैं ; श्रीनारायण ने जिन्हें व्यासरूप से कहा है। भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा एवं करणापाटव—ये सब दोष ईश्वर के वचनों में नहीं होते। उपनिषत् के प्रमाणों से समर्थित जिस तत्व को सूत्र कहता है उसका अर्थ मुख्यवृत्ति में करनेसे ही उसके परममहत्व एवं स्वयं प्रमाणताकी रक्षा होती है। किन्तु श्रीपादशङ्कराचार्यने जो गौणीवृत्ति से सूत्रों का भाष्य किया है, उससे वेदांत सूत्रों की स्वयं-प्रमाणता नहीं रहती एवं उसके श्रवण करने से ब्रह्म-जीव के सेव्य-सेवकत्व भाव की हानि होती है। अतः वह भक्ति विरोधी भाष्य है। हां, किन्तु श्रीपाद ! उनका भी दोष नहीं है, उन्होंने भी ईश्वर इच्छा से ऐसा किया है।"

इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ने उस सभा में कई एक वेदान्त सूत्रों की मुख्यावृत्ति अर्थानुकूल आलोचना कर उस भाष्यको दूषित प्रमाणित किया। श्रीकृष्ण तत्व, जीव तत्व, सम्बन्धतत्व, अभिधेय एवं पञ्चम परम पुरुषार्थ प्रेम, प्रयोजन तत्व आदि ज्ञातव्य सिद्धांतों

पर प्रभुने विचार प्रगट किये। इस आलोचना का विस्तरशः वर्णन श्रीचैतन्यचरितामृत में कविराज श्रीकृष्णदास गोस्वामीपाद ने किया है। इसप्रकार अश्रुतपूर्व व्याख्या सुनकर समस्त संन्यासी समुदाय चमत्कृत हो उठा—सरस्वतीपाद की मनोवृत्ति बदल गई। श्री महाप्रभु के चरणों के प्रति प्रबल श्रद्धा-वन्या उमड़ उठी एवं क्रोध, ईर्षा, द्वेष-मात्सर्यादि एक साथ बहकर जाने कहां जा पड़े। मानो सरस्वतीपाद का पुनर्जन्म हुआ। भक्ति के माधुर्य, साध्य के आकर्षकत्व एवं जीव के जीवत्व का क्या स्वरूप है—जब इस महत्तत्व को इन्होंने रसराजमहाभावस्वरूप श्रीगौरसुन्दर की मधुर वाणी में सर्वप्रथम सुना तो इनके मन में महाप्रभु के प्रति प्रगाढ़ ममता एवं महान श्रद्धा का उदय हो आया। साथ साथ ऐसी महान विभूति की जो पहले अन्याय एवं अज्ञता पूर्वक अशेष निन्दा की थी, उससे इनका मन अनुतापानल में दग्ध होने लगा। विनय पूर्वक कहने लगे—

"गौराङ्ग! आपने जो मधुर वचनामृतधारा वर्षा की, हमारे शुष्क हृदय प्राङ्गण प्रफुल्लित हो उठे हैं। आपने जो कहा, वह समस्त सत्य है, परम सत्य है। हमने आपके स्वरूप को न जानकर आपकी बहुत निन्दा की। आप तो साक्षात वेदमूर्ति नारायण स्वरूप हैं, हे गौरकृष्ण! हमारे अपराधोंको क्षमा कीजिये।"

यह सुनकर समस्त सभा आनन्द से विह्वल हो उठी "हरि बोल" "हरि बोल" की अव्यक्त ध्वनिसे आकाश वातास गूंज उठा। गौरभक्तों के आनन्द का तो कहना ही क्या। समस्त काशी हरिनाम से मुखरित हो उठी। तत्पश्चात श्रीमहाप्रभु को मध्य में विराजमान कर समस्त संन्यासी समुदाय ने भोजन किया एवं महाप्रभु भक्तों सहित अपने वासस्थान पर पधारे। संन्यासी समाज में श्रीमहाप्रभु ने जिस अपूर्व तत्त्व की व्याख्या की, समस्त काशी में एवं विशेषतः

संन्यासियों में यत्र-तत्र उस विषय का महा आंदोलन तथा आलोचना होने लगी। सरस्वतीपाद के प्रधान प्रधान शिष्य कहने लगे कि श्रीकृष्णचैतन्य के मुख कमल से ही हमने वेदों के प्रकृत तात्पर्य को सर्वप्रथम जाना है। सरस्वतीपाद भी कहने लगे— "श्रीशङ्कराचार्य का उद्देश्य अद्वैतमत स्थापन करना था। उसी सङ्कल्प को लेकर उन्होंने सूत्रों का विकृत अर्थ किया है। वस्तुतः श्रीकृष्णचैतन्य के मुख निर्गत सारतत्व को सुनकर अब हमारे लिये कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहा।"

सरस्वतीपाद का बज्र के समान हृदय द्रवीभूत होगया। भक्तिजात एक अनिर्वचनीय नवीन सुखसिन्धु में निमग्न होगये। निशिदिन उनके नेत्रों में, हृदय में, जागते-सोते में, खाते-पीते में श्रीकृष्णचैतन्य ही घूमने लगे। अपनी इस अवस्था का चित्र इन्होंने अपने इस श्लोक में खींचा है—(श्रीचैतन्यचन्द्रामृत–६१)

> सान्द्रानन्दोज्ज्वलरसमयप्रेमपीयूषसिन्धोः
> कोटिं वर्षेत् किमपि करुणास्निग्धनेत्राञ्चलेन।
> कोऽयं देवः कनककदलीगर्भगौराङ्गयष्टि
> श्चेतोऽकस्मान्मम निजपदे गाढ़ युक्तञ्चकार॥

[जिसके अङ्ग सुवर्ण कदलीवत् गौरकांति विशिष्ट हैं, जो करुणारस निषिक्त कजरारे नेत्रों से महान उज्ज्वल रसमय प्रेमामृत-सिन्धु की कोटि बरसा रहा है, ये देव कौन हैं? मेरे चित्त को क्यों अपने चरणारविन्दों में दृढ़ता पूर्वक आकर्षण कर रहा है?]

एक दिन श्रीमन्महाप्रभु श्रीविन्दुमाधव हरि के दर्शन के लिये मंदिर में पधारे। वहां श्रीमूर्ति का सौन्दर्य-माधुर्य आस्वादन कर श्रीमहाप्रभु प्रेमाविष्ट होकर नृत्य करने लगे। चन्द्रशेखर, श्री तपन, परमानन्द एवं सनातन ने भी श्रीहरिनाम की तान छेड़ दी:—

हरयेनमः कृष्ण यादवाय नमः ।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन ॥

फिर क्या था ? चारों ओर लक्ष लक्ष दर्शनियों की "हरि-हरि" ध्वनि से आनन्द कोलाहल मच गया । निकटवर्ती सरस्वतीपाद के मठ में भी नामध्वनि ने अपूर्व आकर्षणपूर्वक प्रवेश किया। जगत्मान्य विज्ञानी, परम विरक्त, कौपीनधारी संन्यासी-शिरोमणि सरस्वतीपाद अधीर हो उठे ; और दण्ड कमण्डल छोड़ कर मंदिर की ओर दौड़े—मानों श्रीवृन्दावन के मञ्जुल निकुञ्जों में श्रीरास-बिहारी की मदनमनहारी मुरली ने गोपाङ्गनाओं का आह्वान किया। त्रिभवनमोहन उस नृत्यपरायण श्रीराधाकृष्णमिलित गौरविग्रह की असमोर्द्ध माधुरी का दर्शन कर सरस्वतीपाद अपने को सम्भार न सके, सब के साथ साथ "हरि हरि" ध्वनि करने लगे। कम्प, स्वरभङ्ग, प्रस्वेद, वैवर्ण्य, हर्ष-दैन्य-चापल्यादि सञ्चारी विकार भी इनके शरीर पर उदय होने लगे । कुछ समय पश्चात श्रीमन्महाप्रभु को वाह्य हुआ । महाप्रभु ने ज्यों ही सरस्वतीपाद को नमस्कार की, तत्क्षण सरस्वतीपाद ने प्रभु के चरणयुगल पकड़ लिये। महाप्रभु बोले—'अहो ! श्रीपाद ! आप तो जगद्गुरु हैं, परमपूज्य हैं। यह आप क्या करते हैं ? मैं तो आपके दासानुदास तुल्य भी नहीं हूँ। परम श्रेष्ठ होकर मुझ हीनाचार-मूर्ख को वन्दना ? ठीक है ! आप मायातीत ब्रह्म-समान हैं और आपको "सर्वमखिलमिदं ब्रह्म"-ही यद्यपि भासता है, तो भी लोकसंग्रहार्थ ऐसा करना आप को उचित नहीं है ।"

यह सुनकर सरस्वतीपाद के नेत्रों से अखण्डित अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, विनीत-मस्तक, अवरुद्ध-वाणी एवं अत्यन्त दैन्यपूर्वक कहने लगे—"प्रभो ! बस करिये—अब और अधिक लज्जित न करिये। भगवन् ! मैंने आपका महान अपराध किया है,

"चैतन्य की भाव-कालिमा काशी में नहीं बिकेगी" कह कह कर मैं कलङ्कित हो चुका हूँ। पतितपावन ! करुणामय !! आप स्वयं भगवान् हो। आपके चरणों को छोड़ कर मेरे अपराधों के शोधन का और क्या उपाय है ? आपके श्रीचरणकमल ही सर्व अमङ्गलों के नाशक एवं समस्त मङ्गलों के स्रोत हैं। मैं आपकी शरण हूँ।"

श्रीमहाप्रभु ने कहा—"विष्णु ! विष्णु !! सरस्वतीपाद मैं तो क्षुद्रजीव हूँ। जीवको भगवान् मानना यही अपराधों का मूल है।"

"हे गौराङ्ग ! आप निस्सन्देह साक्षात स्वयं-भगवान् हो"—सरस्वतीपाद ने कहा, "यद्यपि जीवों की शिक्षा के लिये आप अपने को भगवत्-भक्त मानते हो, तथापि आप मेरे परम गुरु हैं। हे पावन ! आपके चरणों में मेरी भक्ति बनी रहे। मैं आपको कोटि कोटि प्रणाम करता हूँ।"

श्रीमन्महाप्रभु ने सरस्वतीपाद को उठाकर आलिङ्गन किया और बताया कि—"श्रीपाद ! वेदांतसूत्र भगवान् वेदव्यास रचित हैं एवं वेदव्यास रचित श्रीमद्भागवत् ही वेदांतसूत्रों का अपौरषेय भाष्य है। भगवान् एवं जीव में सेव्य-सेवक सम्बन्ध है। भगवत्-भक्ति ही अभिधेय है। प्रेम ही प्रयोजन है। भगवान् प्रेम के ही वशीभूत हैं। कलियुग में प्रेम प्राप्ति का एकमात्र साधन श्रीहरिनाम सङ्कीर्तन है।" इस प्रकार अनेक शिक्षा प्राप्त कर सरस्वतीपाद परम कृतार्थ होगये। श्रीमहाप्रभु हरि ध्वनि पूर्वक अपने वासस्थान पर चले आये।

श्रीसरस्वतीपाद का जीवन पलट गया। कल वे शुष्क मायावादी-संन्यासी थे, आज वे होगये—परमोन्मत्त प्रेमी। कुछ दिन पहले जो ब्रह्म-स्वरूप स्वाधीनपुरुष बनते थे, अब वे प्रेम-भिखारिन अबलावत् कृष्ण-विरह में कातर होकर कभी रोने लगते,

कभी "हा गौरकृष्ण" "हा गौरकृष्ण" कह कर नृत्य करने लगते। और कहा करते—(श्रीचैतन्यचन्द्रामृत—६०)

निष्ठां प्राप्ता व्यवहृतिततिर्लौकिकी वैदिकी वा
या वा लज्जा प्रहसनसमुद्गाननाट्योत्सवेषु।
ये वाभुवन्नहह सहजप्राणदेहार्थधर्म्मा
गौरश्चौरः सकलमहरत् कोऽपि मे तीव्रवीर्य्यः॥

"अतिशय बलवान किसी गौरवर्ण चोर ने आकर मेरे निष्ठाप्राप्त लौकिकी एवं वैदिकी व्यवहार समूह एवं प्रहसन-उच्चस्वर संकीर्तन नाट्यादि विषयक लज्जा तथा प्राण एवं देह के स्वाभाविक धर्म—ये समस्त हरण कर लिये हैं।"

श्रीमन्महाप्रभु ने जब काशी त्याग कर नीलाचल जाने का निश्चय किया तब सरस्वतीपाद ने रात के समय महाप्रभु के निकट जाकर प्रार्थना की—कि उसे भी महाप्रभु अपने साथ नीलाचल चलने की आज्ञा दें। कारण कि उनका विरह सरस्वतीपाद से सहन नहीं हो सकेगा। श्रीमन्महाप्रभु ने इन्हें अनेक प्रकार प्रबोध दिया और श्रीवृन्दाबन जाने की आज्ञा की। श्रीसरस्वतीपाद के आर्द्र होने पर श्रीमन्महाप्रभु ने इन्हें विश्वास दिलाया कि जब भी ये महाप्रभु को स्मरण करेंगे, महाप्रभु इन्हें दर्शन देंगे। सरस्वतीपाद बोले "प्रभो! आपके प्रबोध से मैं अति आनन्दित एवं कृतार्थ हुआ हूँ।" श्रीमहाप्रभु ने आशीर्वाद दिया कि "यह आनन्द तुम्हारा प्रतिक्षण वर्द्धित हो और आज से तुम्हारा नाम भी "प्रबोधानन्द" हुआ।"

जिस समय श्रीमहाप्रभु नीलाचल की ओर बढ़े, ये भी उसी समय सम्वत् १५७०-७१ में श्रीवृन्दाबन की ओर चल दिये। उस समय श्रीवृन्दाबन एक अगम्य जङ्गलमय वन था। समस्त लीला स्थान गुप्त पड़े थे। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के आज्ञादेश से

सं. १५६५–६६ में श्रीलोकनाथ गोस्वामीपाद, श्रीभूगर्भ गोस्वामीपाद एवं श्रीसुबुद्धिराय ये तीन महापुरुष ही क्रमशः श्रीवृन्दावन में विराजमान थे। सं० १५७१–७२ में श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती भी श्रीवृन्दावन में आ पहुँचे। तत्पश्चात श्रीरूपगोस्वामीपाद, श्रीसनातन गोस्वामीपाद तथा श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीपाद श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा से श्रीवृन्दावन में पधारे। श्रीवृन्दावनस्थ समस्त लीलास्थानों के उद्घाटन का गौरव श्रीगौड़ीय वैष्णववृन्द को ही प्राप्तहुआ है।

अपने भ्रातुष्पुत्र श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीपाद को देख कर श्रीसरस्वतीपाद अतीव हर्षित हुए। श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीपाद ने श्रीसरस्वतीपाद से समस्त भजन शिक्षा प्राप्त की एवं इनके कृपा–बल को प्राप्त कर वैष्णवस्मृति "श्रीहरिभक्ति विलास" ग्रंथ का अनिर्वचनीय सङ्कलन किया। श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद ने भक्ति-जात प्रेममहासिन्धु में निमग्न हो रसराजमहाभावस्वरूप श्रीश्री गौरसुन्दर, अनन्त सौन्दर्य-माधुर्य लीलाबिहारी श्रीराधामाधव एवं परमोज्ज्वलरसात्मक लीलास्थली श्रीधाम वृन्दावन के जिस अद्भुत चमत्कारी चिन्मय सौन्दर्य-माधुर्य का आस्वादन किया, उसे आनन्दान्दोलित एवं प्रेमतरङ्गायित हृदयोद्गारों के द्वारा अपनी अनेक अपूर्व रचनाओं के रूप में रसिकसमाज को प्रदान किया है।

श्रीसरस्वतीपाद का श्रीचैतन्यचन्द्रामृत श्रीमन्महाप्रभु की अवतार-महिमा के सम्बन्ध में शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार-परि–पूरित प्रौढ़िवादमय कोषकाव्य व प्रकरण ग्रंथ है। जिसमें सरस्वती-पाद ने अपनी एकान्त गौरभक्ति एवं गौरनिष्ठा को दरसाया है। श्रीगौराङ्ग की कृपा प्राप्ति के पश्चात इनका चित्त श्रीगौराङ्ग भक्ति-रससिन्धु में ऐसा विलीन एवं सम्मोहित होगया कि श्रीगौर–सुन्दर के विना और किसी भी उपास्य में इनकी भजनासक्ति न

रही; क्योंकि त्रिभुवनमोहन श्रीगौरचन्द्र के साक्षात् दर्शन कर इन के मानसिक नेत्रों ने उन्हें परमभजनीय श्रीराधागोविन्द मिलित-तत्व अनुभव कर लिया था। यह ग्रंथ उसी शुभसमय की ही रचना है। श्रीगौरगणोद्देश (१६३) में कहा गया है कि—

तुङ्गविद्या व्रजे यासीत् सर्वशास्त्रविशारदा।
सा प्रबोधानन्दयति गौरोद्गान-सरस्वती॥

"श्रीव्रजलीला में जो सर्वशास्त्र विशारदा श्रीतुङ्गविद्या हैं, वही गौर-गुणगायक श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती हुए हैं।" भगवान् की समस्तलीलाऐं अचिन्त्य हैं। कभी कभी भगवान् की योगमाया (स्वरूप शक्ति) भगवान् के नित्य पार्षदों को भी भक्ति विरोधी भाव ग्रहण कराके भगवत्-लीला की पुष्टि किया करती है। जैसे भगवत् नित्य-पार्षद जय-विजय की आसुरी-भाव सम्बन्धीय लीला में हम अनुभव करते हैं; उसी प्रकार अपने नित्य पार्षद श्री सरस्वतीपाद को मायावाद में आविष्ट कर असंख्य मायावादियों का उद्धार ही श्रीमन्महाप्रभु लीला का अभिप्रेत जानना चाहिये। श्रीवृन्दावन दर्शन करते ही इनका प्रकृत स्वरूप उच्छलित होउठा। ये अपने प्राणधन श्रीयुगलकिशोर की उपासना में तल्लीन होगये। वस्तुतः श्रीश्रीगौरकृपासे ही प्रेम-महिमा, नाममाधुरी एवं श्रीवृन्दावन माधुरीमें प्रवेशाधिकार प्राप्त होसकता है एवं तभी परमरसचमत्कार माधुर्यसीमा श्रीराधा-तत्व आदि की उपलब्धि होसकती है। श्रीसरस्वतीपाद ने श्रीश्रीगौरकृपा प्राप्ति के पश्चात श्रीराधातत्व को लावण्यसार, श्रीकृष्णसुखैकसार, कारुण्यसार, माधुर्यसार, वैदग्धी-सार, रतिकेलिविलाससार तथा अखिल सारात्सार अनुभव कर उनकी लीलाखेलन चातुरी, वचन-चातुरी, कुञ्ज-अभिसार चातुरी तथा नवनवायमान क्रीड़ाकला-चातुरी आदि का वर्णन अपने "श्रीराधा-रससुधानिधि" ग्रंथ में किया है।

यहां यह विषय आलोचनीय है कि जयपुर में श्रीगोविन्द-पुस्तकालय में इस ग्रंथ के दो रूप प्राप्त होते हैं। एक पुस्तक का नाम "श्रीराधा-रससुधानिधि" है जो श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद विरचित है एवं जिस में एक आदि का और एक अन्त का श्लोक अर्थात २ श्लोक दूसरी प्रति से अधिक हैं! आदि का श्लोक श्रीचैतन्यमहाप्रभु—वन्दनात्मक है। अन्तिम श्लोक में ग्रंथकार (सरस्वतीपाद) ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है यथा—

स जयति गौरपयोधि र्मायावादार्कतापसन्तप्तं।
हृन्नभ उदशीतलयत् यो राधारससुधानिधिना ॥

"उस गौर-सिन्धुकी जय हो, जिसने मेरे मायावादरूप सूर्यताप से संतप्त हृदय-आकाश को'राधारससुधानिधि'द्वारा शीतल किया है।"

इसप्रकार की पुस्तक मूल एवं संस्कृत टीकायुक्त बङ्गलालिपि में चिरकालीन मुद्रित कईएक गौड़ीयवैष्णवों के पास देखी गई है। श्रीगौड़ीयवैष्णव इस रचना को श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद विरचित घोषित करते हैं।

दूसरी पुस्तक का नाम "श्रीराधासुधानिधि" है जिस पर "श्रीहरिवंश–रचित" उल्लिखित है। इस पुस्तक में पूर्वोल्लिखित आद्योपान्त के दो श्लोक नहीं हैं। इस प्रकार की पुस्तक हिन्दीलिपि में अनुवाद सहित [illegible] प्रकाशित हो चुकी है।

आद्योपान्त के श्लोकों को छोड़ कर दोनों पुस्तकों के समस्त श्लोक अक्षरशः एक हैं और उनमें कहीं भी यह अनुसन्धान नहीं मिलता कि ग्रंथकार कौन है। मि० ग्रौस अपनी "मथुरा" नामक पुस्तक में एवं श्रीराधाबल्लभीय वैष्णव इस रचना को श्रीहरिवंश-पाद रचित घोषित करते हैं।

लेखक का मन्तव्य है कि इस अनिर्वचनीय रचना का रचयिता कोई भी क्यों न हो, वह महापुरुष परमाभिवन्दनीय है।

समस्त वैष्णवाचार्य समस्त जगत् के लिये समान पूज्यनीय एवं आदरणीय हैं। भक्तिपथपथिक रसिकसमाज के लिये अपराध-जनक वादविवाद को त्यागकर इस अपूर्व रचना में प्रतिपादित रस का आस्वादन ही श्रेयस्कर है।

श्रीसरस्वतीपादकी तृतीय अद्भुत रचना 'श्रीसङ्गीतमाधव' है। कविराज श्रीजयदेव की मधुर कोमलकान्त-पदावलि का अनुकरण करते हुए सरस्वतीपाद ने इसग्रंथ में श्रीगौड़ीयवैष्णव समाज के लिये साधनोपयोगी बहुत कुछ सम्भार भर दिया है। श्रीयुगलकिशोर के परस्पर विरह का अपूर्व वर्णन करते हुए सरस्वतीपाद ने श्रीकृष्ण के नेत्रों में सर्वत्र राधामय-जगत् का चित्र खींचा है। (श्रीसङ्गीतमाधव एवं श्रीचैतन्यचन्द्रामृत ये दोनों ग्रंथ हिन्दीलिपि में अनुवाद सहित प्रकाशित होचुके हैं)

इनकी चतुर्थ आश्चर्यजनक रचना "आश्चर्यरास-प्रबन्ध" में श्रीमद्भागवत् की रासलीला का विलक्षण एवं अद्भुत वर्णन है।

श्रीसरस्वतीपाद विरचित श्रीविवेकशतक तथा श्रीनवद्वीप शतक ग्रंथ भी बहु महत्वपूर्ण रचनाएं हैं। इनकी सार्वजनीन, सम्प्रदाय-सीमातीत महामहिममय सप्तम रचना है—प्रस्तुत ग्रंथ श्रीवृन्दाबन महिमामृत। यह ग्रंथ भाव-प्राचुर्य से, भाषा-माधुर्य से वर्णना-सौन्दर्य से, वस्तु-वैभव से एवं कल्पना-गौरव से पाठक-गणों का मनोमद एवं तृप्तिप्रद होता हुआ जगद्वासी नरनारी का निरतिशय कल्याण साधक है। जो एकदिन शुष्क निर्विशेष ब्रह्म-ज्ञान की मरुभूमि में शुष्क पाषाणवत् जीवन यापन कररहे थे, इन ब्रह्मवादी संन्यासीपाद ने जब श्रीश्रीगौरसुन्दर की कृपा से अत्यद्भुत सौन्दर्य-माधुर्यपूर्ण महाकाव्यरसमय श्रीवृन्दाबनधाम का दर्शन किया, इनका हृदय प्रफुल्लित हो उठा एवं इनकी भक्तिमयी काव्य-

प्रतिभा श्रीवृन्दावन के सुषमा-सौन्दर्य के आस्वादन में विभोर हो गई तथा श्रीवृन्दावन-महिमा वर्णन-स्फूर्ति अफुरन्तवत् जाग उठी। श्रीवृन्दावन का सौन्दर्य-माधुर्य अन्तर प्रविष्ट होने पर मानव चित्त को प्रेम-भक्ति भाव के किस उच्चतर शिखर पर ले जा सकता है, इस रचना में वह अति सुन्दर रूप एवं विस्तृत भाव से वर्णित हुआ है। श्रीवृन्दावनरस माधुर्य के प्रिय पाठकगण जितनी बार भी इस ग्रंथरत्न का पाठ करेंगे; उतनी बार ही इस की सुमधुर एवं सुललित वाक्य विन्यस्त सर्वोपरि भक्तिरसाश्रित अन्तर्दृष्टिमयी प्रगाढ़ वर्णना में महाचमत्कृति प्राप्त करते हुए अचिन्त्य-तर्कैश्वर्य-सम्वलित नित्यसौन्दर्य–माधुर्यमय श्रीवृन्दावन के अप्राकृत रसास्वादन से निस्सन्देह कृतार्थ होंगे।

श्रीसरस्वतीपाद की रचनाओं को देखकर हम इस रहस्य का भी अनुभव करते हैं कि सरस्वतीपाद ने अपनी सब रचनाओं में एकान्तनिष्ठा का प्रचार किया है। श्रीचैतन्यचन्द्रामृतमें श्रीगौरनिष्ठा, श्रीराधारससुधानिधि में श्रीराधादास्यनिष्ठा, श्रीवृन्दावनमहिमामृत में श्रीवृन्दावनबास निष्ठा एवं श्रीनवद्वीपशतक में नवद्वीपवास निष्ठा इत्यादि। अतः विभिन्न निष्ठावर्णन देखकर इन रचनाओं के रचयिता भी पृथक पृथक हैं—ऐसा अनुमान कर लेना अयौक्तिक है। वस्तुतः इन निष्ठाओं में विरोध की कल्पना तक भी नहीं की जा सकती। कारण कि गौरतत्व एवं राधातत्व अथवा राधागोविन्द तत्व एक ही वस्तु है। जैसे नाम और नामी अभिन्न हैं, उसी प्रकार धाम और धामी भी अभिन्न हैं, इनमें विरोध एवं भेद का स्थापन सिद्धान्त की हानि करना है। इनकी रचनाओं से सिद्ध होता है कि और तो और मायावादकृत शुष्क हृदय में भी श्रीगौर कृपा के द्वारा राधातत्व, कृष्णतत्व, तत्केलिविलासतत्व एवं धामतत्व आदि परम साध्य वस्तु का वास्तविक स्फुरण हो सकता है।

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि कई एक महानुभावों की धारणा है—"श्रीप्रबोधानन्द एवं श्रीप्रकाशानन्द ये दो पृथक व्यक्ति हैं एवं उल्लिखित रचनाएं श्रीरङ्गक्षेत्रवासी श्रीप्रबोधानन्द की हैं—काशीवासी श्रीप्रकाशानन्द की नहीं।"

किन्तु इस धारणा का जो मूल है, वह है—"श्रीरङ्ग क्षेत्र में श्रीमन्महाप्रभु एवं श्रीप्रबोधानन्द का मिलन"; जो केवल "भक्तिरत्नाकर" ग्रन्थमें ही देखा जाता है एवं श्रीचैतन्यचरितामृत-आदि ग्रंथों में केवल "प्रकाशानन्द" नाम का उल्लेख। यद्यपि यह विषय विस्तरशः आलोचनीय है किन्तु ग्रंथ विस्तार-भय से यहां इतना वक्तव्य है कि इनके मिलन का उल्लेख "भक्ति रत्नाकर" के सिवाय श्रीचैतन्यभागवत्, श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीचैतन्यचन्द्रोदय, श्रीमुरारीगुप्त-कचड़ा, श्रीचैतन्यचरित-महाकाव्य तथा श्रीप्रबोधानन्द एवं गोपालभट्ट आदि और किसी भी ग्रन्थ में नहीं है। श्रीवैङ्कटभट्ट, श्रीत्रिमल्लभट्ट का श्रीमहाप्रभु से मिलन जब इन ग्रंथों में विस्तरशः वर्णित है, फिर श्रीप्रबोधानन्दपाद जैसे महान् पण्डित, अनन्य गौरभक्त का कुछ भी उल्लेख प्राप्त न होना, यही सिद्ध करता है कि दक्षिणयात्रा में श्रीमहाप्रभु के साथ श्रीप्रबोधानन्द का मिलन नहीं हुआ—ये वहां पर थे ही नहीं। श्रीलालदासकृत बाङ्गला भक्तमाल में लिखा है—

प्रकाशानन्द सरस्वती नाम तार छिल।
प्रभु ही प्रबोधानन्द बलिया राखिल॥

अर्थात—पहिले इनका नाम प्रकाशानन्द था फिर श्रीमहाप्रभु ने इनका नाम प्रबोधानन्द रखा। हम यह भी अनुभव करते हैं कि "वैङ्कटभट्ट", "त्रिमल्लभट्ट", "गोपालभट्ट" आदि नामों के साथ "प्रबोधानन्द" नाम का कोई मेल नहीं है—नाम-शैली ही विभिन्न है। अतः यह अनुमान होता है कि गृहस्थाश्रम में इनका

नाम अपने वंश नामों के अनुरूप कोई एक होगा, "प्रकाशानन्द" संन्यासाश्रम का नाम है एवं प्रबुद्ध होने के पश्चात "प्रबोधानन्द" नाम इन्हें श्रीमहाप्रभु ने प्रदान किया है।

श्रीसरस्वतीपाद काशीवासी थे, मायावादी थे, श्रीमहाप्रभु ने इनका उद्धार किया—इसके ज्वलन्त प्रमाण इनकी रचनाओं में अनेक स्थानों पर प्राप्त होते हैं। ये श्रीगोपालभट्ट के पितृव्य थे—इसमें भी कुछ संशय नहीं है।

अतः यह सिद्ध होता है कि श्रीप्रबोधानन्द एवं श्रीप्रकाशानन्द एक ही व्यक्ति है और उल्लिखित रचनाएं इन्हीं की हैं।

पाठकवृन्द ! श्रीसरस्वतीपाद के बहुमहत्वपूर्ण जीवन एवं इनकी अपूर्व रचनाओं से हम अपने साध्यशिरोमणि को उपलब्ध करते हुए यही शिक्षा लाभ करते हैं कि प्रत्येक साधक की भाव-धारा एवं भजन पद्धति में तीव्र अनुराग-वैराग्य-व्याकुलता; तथा निरन्तर स्मरण-स्फूर्त्ति-आवेश आदि की परमावश्यकता है। तीव्र भक्तियोग के बिना—मृदुमन्थर, मृतक-भजन से कभी भी साध्य-वस्तु की प्राप्ति नहीं होसकती। श्रीप्रियादासी जी ने अपनी भक्त-माल में इनके विषय में क्या सुन्दर उल्लेख किया है :—

श्रीप्रबोधानन्द, बड़े रसिक आनन्दकन्द, श्रीचैतन्यचन्द्र जू के पारखद प्यारे हैं। राधाकृष्ण कुञ्जकेलि, निपट नवेलि कही, झेलि रसरूप दोऊ किये दृग तारे हैं॥ वृन्दाबन वास को हुलास लै प्रकास कियो, दियो सुखसिन्धु, कर्म धर्म सब टारे हैं। ताहीं सुनि सुनि कोटि कोटि जनरङ्ग पायो, विपिन सुहायो, बसे तन मन वारे हैं॥

लेखक—
श्यामलाल हकीम,
श्रीवृन्दाबन।

———

॥ श्रीश्री कृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः ॥

• श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः •

श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्

तृतीयं शतकम्

[१]

स्वान्तर्भावविरोधिनीव्यवहृतिः सर्वा शनै स्त्यज्यतां
स्वान्तश्चिन्तित तत्वमेव सततं सर्वत्र सन्धीयताम् ।
तद्भावेक्षणतः सदा स्थिरचरेऽन्यादृक् तिरोभाव्यतां
वृन्दारण्यविलासिनो निंशिदिवा दास्योत्सवे स्थीयताम् ॥

अपने आन्तरिक-भाव (श्रीकृष्ण-दास्यभाव) के विरोधी सब व्यवहारों को धीरे धीरे त्याग कर, अन्तश्चिन्तित तत्व (सेव्यतत्व, श्रीराधाकृष्णतत्व) का ही निरन्तर सर्वत्र अनुसन्धान (खोज) कर; सदा उसी भावमयी दृष्टि से स्थावर जङ्गमादि को देखते हुए अन्य प्रकार की भावनाओं का त्याग कर, श्रीवृन्दाबनविलासी श्रीयुगल किशोर की सेवा में निशिदिन तत्पर रह ॥१॥

[२]

प्रकृत्यन्तं तीर्त्वा प्रविश वितते ब्रह्ममहसि
स्फुरत् पश्यानैकान्तिक कलित वैकुण्ठभवनम् ।
तदध्युचान्युचान्यनुसर सुधामान्यथ महो-
ज्ज्वलेत्वृन्दारण्ये भ्रम यदि किमप्यत्र मिलति ॥

प्रकृति आवरण उल्लङ्घन कर विस्तीर्ण ब्रह्म ज्योतिमें प्रवेश कर, फिर अनैकान्तिक (जो एकान्तिक-अद्वितीय ब्रह्मवादी नहीं हैं) अर्थात भक्त ही जिसे देख सकते हैं—उस वैकुण्ठलोक के दर्शन कर; उस से ऊपर उच्च उच्चतर मनोहर धामों का अनुसरण कर एवं यदि किसी अनिर्वचनीय वस्तु के पानेकी इच्छा हो तो सर्वोपरि महा-उज्ज्वल श्रीवृन्दाबन में भ्रमण कर ॥२॥

[३]

अङ्गेऽङ्गेऽनङ्गलीलाजलनिधि रमितो माधुरीवारिधीना-
मेकैकं तत्र कोटिः प्रतिपद मुदयत्येतदास्वादमत्तः ।
श्यामः स श्रीकिशोरः प्रतिनिमिषमहो कोटिकोटिं विकारान्
धत्ते कन्दर्पदर्पात् परमरसनिधौ कानने राधिकायाः ॥

अहो ! वह श्रीश्यामकिशोर प्रति अङ्ग में अनन्त अनङ्ग लीला समुद्र के द्वारा आनन्दित हो रहे हैं एवं माधुर्य-समुद्र के पद-पद में हर एक अङ्ग को ही कोटिगुणा और अधिक प्रकाशित कर रहे हैं; तथा उसी आस्वादन में उन्मत्त होकर श्रीराधा का परम रसनिधि रूप इस श्रीवृन्दाबन में कन्दर्प-दर्प के कारण प्रति निमिष में ही कोटि कोटि विकारों को प्राप्त होरहा है ॥३॥

[४]

वन्दे वृन्दावनगतमहं भक्तिभारावनम्रो-
धन्याग्रण्यं कृमिमपि न चान्यत्र संस्थान् तृणाय ।
मन्ये ब्रह्मादिकसुरगणान् किं बहूक्त्या ममेयं
प्रौढ़िर्गाढ़ा न खलु परतो भाति कृष्णोऽपि पूर्णः ॥

भक्तिपूर्वक नम्र होकर श्रीवृन्दाबन के परमधन्य कृमि की भी मैं वन्दना करता हूँ, किन्तु अन्यत्र रहने वाले ब्रह्मादिक देवताओं को तृण के समान भी नहीं मानता ।

अधिक और क्या कहूँ ? मेरी यह चतुरतापूर्ण बात पक्की है, क्योंकि श्रीवृन्दाबन को छोड़कर श्रीकृष्ण भी तो पूर्णरूप से प्रतिभात नहीं होते ॥४॥

[५]

वृन्दारण्ये चिदचिदखिलज्योतिराच्छाद कान्ति
स्वच्छानन्तच्छविरससुधासीधु निस्यन्दिनित्वम् ।
सर्वानन्दास्मृतिकर महाप्रेमसौख्यै रगाधे--
राधाकृष्णा नवधि विहृतौ संवस त्यक्तसर्वः ॥

चित्-ज्योति (वैकुण्ठादि अप्राकृत धाम) और अचित्-ज्योति (प्राकृत भवन, देवी धामादि) सब को आच्छादन कारी ज्योति वाले, एवं जिस से उज्ज्वल अनन्त ज्योति-रसामृत टपक रहा है एवं जो अन्य सब प्रकार के आनन्द को भुला देने वाला है, तथा जहां श्रीराधाकृष्ण महाप्रेम सुख से अगाध अनन्त बिहार कर रहे हैं—ऐसे श्रीवृन्दाबन में सब कुछ त्याग कर तू वास कर ॥५॥

[६]

सर्वाश्चर्यं मुदेति यत्र सततं कन्दर्पलीलामयं
गौरश्याम महामनोहर महोद्वन्द्वं किशोराकृति ।
यत्स्वान्तः प्रतिवीथि कल्पितमृजा गन्धाम्बुसेकं कदा
भ्राजन्मञ्जुनिकुञ्जपुञ्जमचलो वृन्दावनं संश्रये ॥

जहां निरन्तर कन्दर्पलीलामय सर्व आश्चर्यजनक किशोरमूर्ति गौरश्याम महामनोहर जोड़ी विराजमान है, जिस की हर एक गली में मार्जन और सुगन्धित जल का छिरकाव होरहा है, जिससे मञ्जुल निकुञ्जसमूह चमक रहा है ; ऐसे श्रीवृन्दाबन में कब मैं अचल निवास करूंगा ? ॥६॥

[७]

नित्य क्रीड़ामयतनु तनुक्षौम मानीलपीतं
विभ्रज्जाम्बुनदमरकतज्योति राश्चर्यलीलम् ।
नाना नर्मप्रहसनमहाकौतुकै र्यत्र नन्द-
त्यानन्दाब्धि--द्वयमिह रतिं विन्द वृन्दाबनान्तः ॥

नित्य क्रीड़ापरायण विग्रह जो सूक्ष्म एवं हलके नीले और पीले रंग के रेशमी वस्त्र धारण कर रहे हैं, सुवर्ण एवं मरकतमणि की ज्योति वाले तथा आश्चर्यमय लीलायुक्त आनन्द के समुद्र दोनों जिस (श्रीवृन्दाबन) में अनेक प्रकार के हास्य प्रहसनादि के महाकौतुक विनोद के द्वारा आनन्द प्राप्त कर रहे हैं, उसी श्रीवृन्दाबन में तू प्रीति कर ॥७॥

[८]

नित्यव्यञ्जन्मधुरमधुराश्चर्यकैशोरवेशं
नित्याऽन्योन्य प्रकटसुषमामाधुरी संनिवेशम् ।
नित्योद्वर्द्धि प्रतिनव मिथः प्रेम नित्याङ्गसङ्ग
नित्यं वृन्दावनभुवि भजे गौरनीलं द्विधाम ॥

श्रीयुगलकिशोर नित्य ही मधुर से सुमधुर आश्चर्यजनक कैशोर वेश धारण करते हैं, नित्य ही एक दूसरे की शोभा और माधुरी में सन्निवेश करते हैं; नवीन नवीन नित्य अङ्ग-सङ्ग से एक दूसरे का प्रेम नित्य ही बढ़ता है. मैं नित्य ही श्रीवृन्दाबन भूमि में उस गौरश्याम जोड़ी का भजन करता हूँ।

[९]

श्रीगान्धर्वारसिकचरणद्वन्द्वमाध्वीकगन्धा-
दन्धा नित्यं मति-मधुकरी श्रीलवृन्दाबनान्तः ।

येषां भ्राम्यत्यति रसभराद् विह्वला तादृशानां।
पादान्ते मे विलुठतु मुहुर्भक्तिभावेन मूर्द्धा॥

श्रीराधिका-रसिक (श्रीश्यामसुन्दर) के युगल चरणों की मधुगंध में विमुग्ध होकर जिनकी बुद्धिरूप मधुकरी नित्य अति रसपूर्णता से विह्वला होकर श्रीवृन्दावन में ही भ्रमण करती है, उनके चरणों में भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर मैं बारबार वन्दना करता हूं ॥६॥

[१०]

स्वच्छप्रोज्ज्वलदिव्यवासकुसुमाद्यापूर्ण संशीतल-
च्छायाभाजितले नवक्षितिरुहां संक्रीड़-सुप्तासिकम्।
कुञ्जेकुञ्जउदारकेलि कुसुमोल्लोचास्तरे पानका-
द्याढ्ये यस्य तदद्भुतं द्वयमह स्तत् पश्य वृन्दावने॥

जिस (श्रीवृन्दाबन) के स्वच्छ परमउज्ज्वल दिव्य वस्त्र-रूप कुसुमादि से परिपूर्ण सुशीतलछायायुक्त नवीन वृक्षों के नीचे दोनों सुन्दर क्रीड़ाकर निद्रित भाव से विराजते हैं, एवं जिसकी कुसुमरूप चन्द्रातपों से आच्छादित विविध मधुभरी कुञ्ज कुञ्ज में उदारकेलिपरायण अद्भुत श्रीयुगलकिशोर अवस्थित हैं—उसी श्रीवृन्दाबन में ज्योतिर्मय उन युगलकिशोर का दर्शन कर ॥१०॥

[११]

त्रैगुण्यातीतपूर्णोज्ज्वल विमलमहाकामबीजात्मदिव्य-
ज्योतिःस्वानन्दसिन्धौ किमपि सुमधुरं द्वीपमाश्चर्यमस्ति।
तस्मिन् वृन्दावनं तद्रहसि रसभरैर्मञ्जुलाकुञ्जवाटी
काचित्तत्राति भावाद् भज सुरतिनिधीराधिकाकृष्णचन्द्रौ॥

सत-रज तम–इन तीन गुणों से परे अत्यन्त उज्ज्वल शुद्ध महाकामबीज स्वरूप दिव्य ज्योतिके स्वानन्द (निजानन्द)

समुद्र में कोई एक अति मधुर आश्चर्यजनक द्वीप है; उसमें श्रीवृन्दाबन अवस्थित है, उस श्रीवृन्दाबन के गुप्त स्थान में रसपूर्ण कोई एक मनोहर कुञ्जबाटी विद्यमान है—वहां सुरति निधि श्रीराधिका-कृष्णचन्द्रका अति भावपूर्वक भजन करा॥११॥

[१२]

दृष्ट्वा दृष्ट्वा राधिकाकृष्णयो स्तद्दिव्यं रूपं दिव्यकन्दर्पकेलिम् ।
श्रुत्वा श्रुत्वा शीतपीयूषवाणीं वृन्दारण्ये किं रसाब्धि विगाहे ॥

श्रीराधाकृष्ण के उस दिव्य रूप एवं दिव्य कन्दर्पकेलि का दर्शन करते करते तथा उनकी सुशीतल अमृतवाणी को सुन सुन कर इस श्रीवृन्दाबन में क्या (कभी) मैं भी रस के समुद्र में अवगाहन कर सकूंगा ? ॥१२॥

[१३]

ब्रह्मज्योतिः पूर्णमानन्दसान्द्रं राधाकृष्णाकार माश्चर्यसीम ।
शुद्धस्वाद्यप्रीतिशक्तेर्निधानं वृन्दारण्ये यो भजेत् सोऽतिधन्यः ॥

ब्रह्मज्योति पूर्ण, आनन्दघन, आश्चर्य की सीमा श्रीराधा-कृष्णनाम धारी विशुद्ध एवं आस्वादन करने योग्य प्रीति-शक्ति के बीज स्वरूप को जो श्रीवृन्दाबन में भजे, वही अति धन्य है ॥१३॥

[१४]

नवं नवमहो दधद् वपुरपूर्व कैशोरकं
नवं नवमहो वहद् वहल मन्मथाडम्बरम् ।
नवं नवमहो दुहत् सुखमहाब्धि मालीदृशां
दृशाऽहमपि किं पिबाम्यभय धामवृन्दाबने ॥

अहो ! नव नवायमान अपूर्व कैशोर देह धारण करने वाले, अनेक प्रकार के नवीन नवीन काम-आडम्बर प्रकट करने वाले एवं सखियों के नेत्रों को नूतन-नूतन सुख महा-

सागर दान करने वाले, उस अभयदानकारी युगलकिशोर के मैं भी क्या इन नेत्रोंके द्वारा श्रीवृन्दावन में दर्शन करसकूंगा ?

[१५]

प्रभो मदनमोहन त्वमेत्ति चारुवृन्दाटवी-
निकुञ्ज भवने मया दयित ! कर्हि सेविष्यसे ?
प्रसून-शयनं गतः सरभसं ममात्मेश्वरी-
सहाय उरु मन्मथक्षुभितमूर्त्ति रुच्यत्स्मितः ॥

हे प्रभो मदनमोहन ! हे प्यारे ! मनोहर श्रीवृन्दावन के निकुञ्ज भवन में पुष्प-शय्या पर मेरी प्राणेश्वरी (श्रीराधा) के साथ प्रसन्नचित्त बैठे हुए प्रबल काम के द्वारा क्षुभित-आकृति वाले एवं मृदु मधुर मुस्कानयुक्त आपकी मैं कब सेवा करूंगा ?

[१६]

क्षणाच्छरदुपागमं क्षणात् क्षणत एव वर्षागमं
क्षणात् सुरभि-वैभवं क्षणत एव चान्यत्तुमत् ।
सदा जनित-कौतुकं किमपि राधिकाकृष्णयोः
स्मर प्रतिपदोल्लसद् रसमय श्रीवृन्दाबनम् ॥

श्रीवृन्दाबन में क्षण क्षण में शरद् आजाती है, और क्षण में फिर वर्षा आजाती है; क्षण में वसन्त शोभा देता है तो क्षण पीछे किसी अन्य ऋतु का आगमन होता है। इस प्रकार सर्वदा श्रीराधाकृष्ण के किसी न किसी (अनिर्वचनीय) कौतुक को सम्पादन करने वाले एवं पद-पद पर आनन्द विधान करने वाले श्रीवृन्दाबन को ही स्मरण कर ॥१६॥

[१७]

विलसत् कदम्बमूलालम्बी सम्बीत पीतचारुपटः ।
राधां विलोक्य मुरलीं क्वणयन् वृन्दावने हरिर्जयति ॥

कदम्बवृक्ष के मूल का अवलम्बन लिये हुए, पीताम्बर धारी, श्रीराधा का दर्शन करते करते मुरली बजाने वाले, श्रीहरि श्रीवृन्दावन में जययुक्त हो रहे हैं ॥१७॥

[१८]

कालिन्दीपुलिनबने मोहननवकुञ्जमन्दिरद्वारि ।
सह राधयोपविष्टं सरससखीजुष्टमाश्रये कृष्णम् ॥

श्रीयमुना के पुलिन-बन में मोहन नवकुञ्ज मन्दिर के द्वार पर श्रीराधा के साथ बैठे हुए एवं रसवती सखियों से सेवित श्रीकृष्ण का मैं आश्रय लेता हूँ ॥१८॥

[१९]

तदनङ्गकेलिरङ्गा न्नर्मविनिर्मित्यमखिडतप्रतिभम् ।
गौरश्याम-सुनागरकिशोर-मिथुनं भजामः कुञ्जेषु ॥

कुञ्ज २ में कामकेलिरङ्ग के वश परिहास्य वाक्यरचना में प्रत्युत्पन्नमति (चतुर) गौरश्यामवर्ण चतुरशिरोमणि श्रीयुगल-किशोर का मैं भजन करता हूँ ॥१९॥

[२०]

मिथोऽनङ्गक्रीड़ारसजलनिधे रूर्मि-निबहैः
प्रियद्वन्द्वे त्यान्दोलितवपुषि तीव्रस्मरमदे ।
न शक्ताः श्रीवृन्दावनभुवि सुवेशादि करणे
बलादप्यानन्दं किमपि रसयन्त्यः प्रजहसुः ॥

श्रीवृन्दाबन में परस्पर कामक्रीड़ा के रस समुद्र की तरङ्गों से जिनके विग्रह झूम रहे हैं एवं जो तीव्र कामोन्मत्त हो रहे हैं ऐसे प्रियतम युगलकिशोर को सखीगण ने बलपूर्वक भी वेषभूषा कराने में असमर्थ होकर कोई एक (अनिर्वचनीय) आनन्द आस्वादन करते हुए परिहास्य किया ॥२०॥

[२१]

श्रीवृन्दावनवैभवं भवविरञ्चाद्यै र्मनागप्यहो
दुर्ज्ञेयं परमोज्ज्वलन्मदरसोदारश्रियामाकरम् ।
श्रीराधामुरलीमनोहर महाश्चर्याति संमोहनं
श्रीमूर्त्तिच्छविकेलिकौतुकभरे श्चाश्चर्यमन्तःस्मर ॥

अहो ! श्रीवृन्दाबन के वैभव को शिव, ब्रह्मादि भी नहीं जान सकते, यह परम उज्ज्वल उन्मादकारी श्रेष्ठ रस की महासम्पति की खान है, यह श्रीराधा-मुरलीमनोहर को भी महा-आश्चर्यभाव से सम्मोहन करने वाला है एवं श्रीमूर्त्ति के कान्ति-केलि-कौतुक आदि के आधिक्य में भी आश्चर्यजनक है—इसका (श्रीवृन्दाबन का) मन से स्मरण कर ।।२१।।

[२२]

वृन्दाकाननकाननस्य परमाशोभा परातः परा-
नन्दत्वद्गुणवृन्दमेव मधुरं येनानिशं गीयते ।
हा वृन्दावन ! कोटिजीवनमपि त्वत्तोऽतितुच्छं यदि
ज्ञातं तर्हि किमस्ति यत्तृणकवच्छक्येत नोपेक्षितुम् ॥

हे श्रीवृन्दाबन ! आपकी वनशोभा सर्वोत्कृष्ट है, हे परानन्द ! आपके मधुर गुणों को जो निशिदिन गान करता है, एवं हे वृन्दाबन ! जो कोटि जीवन भी आपके लिये अतितुच्छ जानता है, फिर उसके लिये ससार में ऐसी क्या वस्तु है जिस की तृण के समान उपेक्षा वह नहीं कर सकता ? ।।२२।।

(नोटः—यह श्लोक दोबार कहा गया है—द्वितीय शतक का २८ श्लोक देखिये ।)

[२३]

श्रीवृन्दावनमण्डले यदि शिरः श्रीराधिकाकृष्णयोः
संप्रेमैकरसात्मनोः पदतले न्यस्याभये स्थीयते ।
तर्ह्यास्ते मम लोकतो नहि भयं नो धर्मतो नो दुर-
न्ताधिव्याधिशतात् किमन्यद खिलाधीशाच्च मे नो भयम् ॥

श्रीवृन्दाबन मण्डल में एकमात्र सत्प्रेम के रसस्वरूप श्रीराधाकृष्ण के अभय पदतलों में मस्तक अर्पण कर यदि अवस्थान कर सकूं—तो लोकभय, धर्मभय किंवा सौ सौ भयानक आधि-व्याधियों से और तो क्या अखिल (ब्रह्माण्ड) के अधिपति से भी मुझे कोई भय नहीं है ॥२३॥

[२४]

श्रीराधामुरलीधराति मधुरं श्रीपाणिपादाम्बुज-
स्पर्शोज्जृम्भित पूर्णहर्षजलधावत्यन्तमग्नान्तराः ।
सौभाग्यं रमयाऽपि मृग्यमतुलं संप्राप्तवत्यो महा-
भागानां शिरसि स्थिता व्रततयो नन्दन्ति वृन्दाबने ॥

श्रीराधामुरलीधर के अति मधुर श्रीहस्त एवं चरण-कमलों के स्पर्श से जो प्रफुल्लित हो रहीं हैं, तथा जिनका चित्त पूर्ण हर्ष के समुद्र में निमग्न है, स्वयं लक्ष्मीदेवी जिस अतुलनीय सौभाग्य की वाञ्छा करती है—वही जिनको सम्यक प्रकार से प्राप्त है—महाभाग्यवानों की शिरोमणि ऐसी ये लताऐं श्रीवृन्दाबन में आनन्द ले रही हैं ॥२४॥

[२५]

पुष्पं पुष्पफलादिसम्पदखिलाश्चर्यं महामाधुरी
पूरं दूरनिरस्तदुखदुरिताद्युद्वर्द्धमानच्छवि ।

सान्द्रानन्दसुधार्णवोदितमहाद्वीपेन्दुवृन्दावने
वृन्दं सुन्दरशाखिनामनुदिनं वन्दे मुनीन्द्रैर्नुतम् ॥

आनन्दघन-समुद्र में उदित महाद्वीप के चन्द्र समान जो यह श्रीवृन्दावन है, उसमें प्रफुल्लित, फूलफलादि सम्पत्ति वाले, सबके लिये अथवा समस्त आश्चर्य को उत्पन्न करने वाले महा-माधुर्य से पूर्ण, दुख-पापादि को दूर फैंकने वाले निरन्तर वृद्धिशील कान्ति वाले एवं मुनीन्द्रगण भी जिनकी स्तुति करते हैं—ऐसे वृक्षों की प्रतिदिन मैं वन्दना करता हूँ ॥२५॥

[२६]

पुष्पश्रेणिविकाशहासयुतया गुच्छोरुवक्षोजया
संश्लिष्टाः पुलकालिमण्डितलता वध्वाप्यहो सत्तमाः ।
कृष्णध्यानरसान्मुहुः पुलकिनो माध्वीकधाराश्रवो
नात्मानञ्च परञ्च जानत इमे वृन्दाटवी-शाखिनः ॥

अहो ! पुष्पों के विकाशरूप हास्य से, फूलों के गुच्छरूप स्तनों से जो शोभित हैं एवं पुलकरूप सखियों से जो वेष्टित हैं—ऐसी लतारूप वधुओं के द्वारा ये श्रीवृन्दावन के वृक्ष आलिङ्गित होकर श्रीकृष्ण के ध्यानरस में बारम्बार पुलकित होरहे हैं एवं मधुधारा के छल से अश्रुप्रवाह कर रहे हैं ; ये अपना पराया कुछ भी नहीं जानते ॥२६॥

[२७]

येषामादाय दिव्यं कुसुमकिशलयं तौ मिथः प्रेममूर्त्ति
गौरश्यामौ किशोरावति चतुरतमौ वेणिचूड़ादिकृत्वा ।
पौष्पं निर्माय गेहं शयनमथ फलं प्राश्य सीधूनि पीत्वा
कुर्वाते दिव्यकेलिन्त उरुतरुवरा भान्ति वृन्दावनीयाः ॥

जिनके दिव्य पुष्प और पल्लव लेकर वे प्रेममूर्त्ति अति चतुरतम गौरश्याम युगलकिशोर परस्पर वेणी व चूड़ा बनाते हैं, एवं पुष्पगृह और पुष्पशय्यादि की रचना करते हैं, जिनके फल भोजन करके तथा विविध मधुपान करके वे दिव्य केलि में प्रवृत्त होते हैं, वे श्रीवृन्दाबन के महावृक्षराज शोभा पा रहे हैं ॥२७॥

[२८]

यत् पुष्पं घ्रातवन्तः सकृदपि पवनं वा स्पृशन्तः स्वरूपं
लोकंवाऽऽलोकयन्तः कमपि नतिकृतः कर्हिचिद् यद्दिशेऽपि ।
यन्नामाप्येकवारं शुभममिदधतः कीकटादौ च मृत्वा
प्राप्स्यन्त्येवाञ्जसा तन्मुनिवर महितं धाम ये केचिदेव ॥

जिन्होंने (जीवन में) एकबार भी श्रीवृन्दावन के फूल को सूंघा है, वहां की वायु का स्पर्श किया है, उसके (श्रीवृन्दाबन के) स्वरूप का या वहां के किसी व्यक्ति का दर्शन किया है, उसका मङ्गलमय मधुर नाम एक बार भी उच्चारण किया है, वे कीकट (विहार) आदि देश में शरीर त्यागने पर भी शीघ्र ही—श्रेष्ठ मुनिगण जिस की वन्दना करते हैं, इस श्रीवृन्दाबनधाम को प्राप्त होंगे—इसमें संशय नहीं है ॥२८॥

[२९]

यत्रैव प्रकटं किशोरमिथुनं तद्गौरनीलच्छवि
श्रीशस्यापिविमोहनं स्मरकलारङ्गैक रम्याकृति ।
सर्वानन्दकदम्बकोपरि चमत्कारं महादुर्लभं
कञ्चित् प्रेमरसं स्रवत्तदखिलं क्षिप्त्वै हि वृन्दावनम् ॥

जहां लक्ष्मी और ब्रह्मादि को भी विमोहित करने वाले एकमात्र कामकला रङ्ग की मोहन मूर्त्ति गौरश्याम श्रीयुगलकिशोर विराजमान हैं, जहां सर्वानन्दराशि से भी अधिक

चमत्कारी महादुर्लभ कोई (अनिर्वचनीय) प्रेमरस प्रवाहित होरहा है, सर्वस्व त्यागकर उस श्रीवृन्दाबन में आगमन कर।

[३०]

ब्रह्मानन्दमयस्य निर्मलतमस्यान्तर्महाज्योतिषो
ज्योति र्भागवतं चकास्ति किमपि स्वानन्दसारोज्ज्वलम्।
तस्याप्यद्भुतमन्तरन्तर समोर्द्धाश्चर्यमाधुर्यभू-
र्वृन्दारण्यमिह द्वयं भज सखे! तद् गौरनीलं महः॥

निर्मलतम ब्रह्मानन्दमय महाज्योति के बीच स्वानन्द का उज्ज्वल सार कोई एक भगवज्ज्योति प्रकाशित होरही है, उस के भी बीच अद्भुत अतुलनीय माधुर्य-भूमि यह श्रीवृन्दाबन है। हे सखे! इस स्थल पर उस गौरश्याम-युगलविग्रह का भजन कर॥३०॥

[३१]

यदङ्गरुचिभिर्महाप्रणयमाधुरीवीचिभि-
र्विचित्रमवलोकयन् कनकचम्पकस्फुर्त्तिभिः॥
विमुह्यति पदे पदे हरि रपूर्ववृन्दाबने
किशोरमिदमेव मे स्फुरतु धामराधाभिधम्॥

जिसकी महाप्रणय-माधुरी की तरङ्गयुक्त स्वर्णचम्पकवत् देदीप्यमान अङ्गकान्ति की विचित्रता देखकर श्रीहरि अपूर्व श्रीवृन्दाबन में पद पद पर विमोहित होजाते हैं; वह श्रीराधा नामक किशोरमूर्त्ति मेरे हृदयमें स्फूरित हो—यह मेरी प्रार्थना है।

[३२]

आश्चर्याश्चर्यनित्यप्रवहदतिमहामाधुरीसाररूप-
श्रीकेलिप्रेमवैदग्ध्यतुलतरुणिमारम्भ-सौभाग्यपूरौ।
तौ गौरश्यामवर्णौ सहजरतिकलालोललोलौ किशोरौ
श्रीवृन्दारण्यकुञ्जावलिषु सुललितैकान्तरत्या स्मरामि॥

जो अत्याश्चर्यमय अति महामाधुरीसार विशिष्ट रूप, शोभा-सौन्दर्यादि, केलि, प्रेम वैदग्धी, अतुलनीय नवीन यौवन तथा सौभाग्यराशि को धारण कर विराजमान हैं, एवं जो सहज रति-कला के आवेश में अत्यन्त चञ्चल होरहे हैं—उन्हीं गौरश्याम श्रीयुगलकिशोर को श्रीवृन्दावन के कुञ्जों में सुललित एकान्त-रति के साथ मैं स्मरण करता हूं ॥३२॥

[३३]

असमोर्द्धमहाश्चर्यरूपलावण्यशेवधी ।
सदोत्तरङ्गप्रोतुङ्गमहानङ्गरसाम्बुधी ॥

[३४]

मिथः प्रेमातिवैक्लव्या त्रुट्यर्द्धेऽप्य वियोजिनौ ।
सदोत्पुलकसर्वाङ्गौ सदा गद्गदभाषिणौ ॥

अतुलनीय महाश्चर्य रूपलावण्य के समुद्र एवं नित्य उत्तुङ्ग तरङ्गों के समान आकुल महाकाम-समुद्रवत् श्रीयुगल-किशोर—॥३३॥ परस्पर अतिशय प्रेम की व्याकुलता के कारण अर्द्ध त्रुटि (अति थोड़े) समय के लिये भी एक दूसरे का विरह सहन नहीं कर सकते। सब अङ्गों में सदा उच्च पुलकावलि धारण करते हैं एवं सदा गद्गद्-वाक्य बोलते हैं ॥३४॥

[३५]

अनुक्षणं सदाविष्टौ न विदन्तौ च किञ्चन ।
कार्यमानौ सखीवृन्दै र्भोजनाच्छादनादिकम् ॥

वे (श्रीराधाकृष्ण) हर क्षण ही सर्वदा आविष्ट-चित्त रहने से कुछ भी नहीं जानते; भोजन तथा वस्त्र धारण करने आदि का कार्य भी सखियों के द्वारा कराते हैं ॥३५॥

[३६]

निर्मर्यादविवर्द्धिष्णुमहानन्दमहोन्मदौ ।
गौरश्यामकिशोरौ तौ नित्याऽन्योन्याङ्गसङ्गिनौ ।

[३७]

अनङ्गैकरसोदारे श्रीवृन्दावनधामनि ।
यापयन्तौ दिननिशाः केवलानङ्ग-केलिभिः ॥

निरन्तर वृद्धिशील महानन्द के कारण महा उन्मत्त एवं नित्य एक दूसरे के अङ्गसङ्गी वे गौरश्याम युगलकिशोर-॥३६॥ एकमात्र कामरस विषय उत्सवपूर्ण श्रीवृन्दाबनधाम में केवल कामकेलिसमूह के द्वारा निशिदिन व्यतीत करते हैं ॥३७॥

[३८]

थुत्कारयन्तौ भजतां सर्वानन्दरसोन्नतीः ।
यो भजेन्नित्यमेकेन भावेन तमहं भजे ॥

वे (श्रीराधाकृष्ण) भजनानन्दीजनों के सबप्रकार के आनन्द रस की पराकाष्ठा को भी थुत्कार करके विराजमान हैं; जो एकान्त भाव से नित्य इन का भजन कर सकता है मैं उसका भजन करता हूँ ॥३८॥

[३९]

त्रैगुण्यातीतपूर्णोज्ज्वलविमलमहाकामराजात्मदिव्य-
ज्ज्योतिः स्वानन्दसिन्धूत्थित मधुरतरद्वीपवृन्दावनान्तः ।
श्रीराधाकृष्णतीव्रप्रणयरसभरोदञ्च-रोमाञ्च पुञ्जाः
कुञ्जालिष्वात्मनाथद्वय पीरचरणव्यग्रगोपालबालाः ॥

त्रिगुण (सत-रज-तम) रहित पूर्ण उज्ज्वल विमल महाकामराज स्वरूप दिव्य ज्योति के स्वानन्द-सागर से प्रगट हुए मधुरतर द्वीप के समान जो श्रीवृन्दाबन है—उसके

कुञ्जों में श्रीराधाकृष्ण के तीव्र प्रेमरस में पूर्ण होकर पुलकित शरीर से अपने प्रियतम नाथ श्रीयुगलकिशोर की सेवामें गोप-बालाएं संलग्न हैं।३६।   [४०]

काञ्ची-मञ्जीर-केयूरक-वलय-घटा-रत्नताटङ्करम्याः
श्रीमन्नासाग्रलोलन्मणिकनकलसन्मौक्तिकाश्चित्रशाटीः ।
सुश्रोणी श्चारुमध्या रुचिरकुचतटीः कञ्चुकोद्भासिहारा
लोलद्वेण्यग्रगुच्छाः स्मर कनकरुचि दासिका राधिकायाः ॥

जो मेखला, नूपुर, बाजुबन्द, कङ्कण एवं अनेक रत्न जटित अंगूठी आदि भूषणों से सुशोभित हैं, जिनके सुन्दर नासाग्र भाग में मणि एवं सुवर्णयुक्त मुक्ता डोलायमान हैं, परिधान में विचित्र साड़ी है, कटिदेश अति सुन्दर है, मध्य-देश अति मनोहर है, जिनके कुचयुगल अति सुन्दर एवं जिन की कञ्चुकी पर चमकते हुए हारों की छटा है, वेणियों के गुच्छे आन्दोलित होरहे हैं—ऐसी स्वर्णवर्ण विशिष्ट श्रीराधिका की दासियों को स्मरण कर ॥४०॥

[४१]

त्रिभङ्गामुत्तुङ्गीकृतरसतरङ्गै र्नवनवो-
न्मदानङ्ग लोलोज्ज्वलघननिभाङ्ग दधमहो !
लसद्बर्होत्तंसो मणिमयवतंसो व्रजकुलाऽ-
बला-नीविस्रंसी स्फुरतु मम वंशीमुखहरिः ॥

अहो ! उच्च उच्च रस-तरङ्गमय नित्यनवीन उन्माद करने वाली काम क्रीड़ा में चञ्चल, उज्ज्वल मेघ के सदृश अङ्गों से जो त्रिभङ्ग हो रहे हैं, मोरपुच्छ एवं मणिमय कुण्डलधारी व्रज की अबलाओं का नीवि बन्धन शिथिल करने वाले मुख पर वंशी-धारी श्रीहरि मेरे हृदय में स्फुरित हों ॥४१॥

[४२]

राधाकृष्णानङ्गतृष्णामहाब्धिं निर्मर्यादं वर्द्धयन्नित्यमेव ।
सान्द्रानन्दापारसर्वोद्ध्वपारं श्रीमद्वृन्दाकाननं प्रीणनं नः ॥

जो श्रीराधाकृष्ण की कामतृष्णा के महासमुद्र की निरन्तर ही असीम वृद्धि करता है एवं जो आनन्दघनराशि के अपार सर्वोत्तम सौन्दर्य तथा सौभाग्य से युक्त है—वही श्रीवृन्दावन ही हमारा प्रीतिस्थल है ॥४२॥

[४३]

केकाभि मुखरीकृताऽखिलदिशो नृत्यन्तहो केकिन-
श्चूतानां विटपे कुहूरिति मुहुः कूजन्त्यहो कोकिलाः ।
गायन्ति प्रतिपुष्पवल्लि मधुरं भृङ्गाङ्गनाः सर्वतः
प्रोन्मालन्ति विचित्रदिव्यकुसुमामोदाश्च वृन्दावने ॥

अहो ! श्रीवृन्दाबन में मोर अपनी केका-ध्वनि से दशों दिशाओं को मुखरित कर नृत्य करते हैं, कोकिलाएं आम्रवृक्षों पर बार बार कुहु-कुहु शब्द कर रही हैं, भंवरे इधर उधर प्रति पुष्पलता पर मधुर गान कररहे हैं, विचित्र दिव्य फूलों की सुगंधि चारों दिशाओं को सुबासित कररही हैं ॥४३॥

[४४]

मुक्ति र्याति यतो बहि र्बहि रहो सन्मार्जनी घातत-
स्त्रस्तास्ता वरसिद्धयो विदधते काकादि यत सेवितुम् ।
यन्नाम्नैव विदूरगाऽपि विलयं मायाऽपि यायादहो !
तद्वृन्दावनमत्यचिन्त्यमहिमा देहान्तमाश्रीयताम् ॥

जहां से मुक्ति सन्मार्जनी (बुहारी) की चोट खाकर दूर से अति दूर जा पड़ती है, जिसकी सेवा करने के लिये श्रेष्ठ अष्ट सिद्धियां विनय-प्रार्थना करने में भी भयभीत होती

हैं, अहो ! जिसका नाम सुनते ही माया दूर जा पड़ती है एवं नाश हो जाती है, उस अति अचिन्त्य महिमायुक्त श्रीवृन्दाबन का देहपात पर्यन्त आश्रय कर ॥४४॥

[४५]

अहो वृन्दारण्यं प्रतिपद विनिस्यन्दि परमो-
न्मदप्रेमानन्दाऽमृतजलधि लोभाकुलयति ।
रमेशब्रह्मादीनथ भगवतः पार्षदवरा-
नतो धीरा नीराञ्जलिमपि निपीयात्र वसत ॥

अहो ! श्रीवृन्दाबन पद पद में ही परम उन्माद उत्पन्न करने वाले प्रेमानन्द-समुद्र को प्रवाहित कररहा है, लक्ष्मी, शिव ब्रह्मादि को एवं श्रीभगवान् के श्रेष्ठ पार्षदों को भी लालायित कर आकुल किये रखता है; अतएव हे धीर पुरुषो ! अञ्जलि भर पानी पीकर भी श्रीवृन्दाबन में वास करो ॥४५॥

[४६]

त्वयाऽऽकण्ठं पीतं यदि परमपीयूषमपि किं
ततो यद्युर्वश्याः स्तनयुगलमाश्लेषि किमतः ।
यदि ब्रह्मानन्दामृतमपि समास्वादि किमतो
यतस्थूत्कृत्येदं व्यसृजदपि वृन्दावनतृणम् ॥

यदि तुमने पेट भरकर अमृत भी पान करलिया, तो उससे क्या ? यदि उर्वशी के स्तनयुगल का तुमने आलिङ्गन करलिया, तो क्या ? और यदि ब्रह्मानन्द-अमृत का भी भली प्रकार आस्वादन तुम्हें मिले, तो भी उससे क्या फल ? क्योंकि श्रीवृन्दाबन के तो तृण ने भी इन समस्त वस्तुओं को थुत्कार कर त्याग दिया है ॥४६॥

[४७]

न तापः साधूनामकृतिषु तथा साधुकृतिषु
प्रकम्पः कालाहेरपि नहि न वा देहदलने ।
प्रहर्षो न ब्रह्माद्यधिकविभवे नापि परमा-
मृतब्रह्मानन्दे समधिगत-वृन्दाबन भुवः ॥

जिन्होंने श्रीवृन्दाबन भूमि को भली प्रकार प्राप्त कर लिया है, उनको सत्कर्मों के करने में या न करने में कुछ भी दुख नहीं; काले सर्प से एवं शरीर के नाश होने में भी उन्हें कुछ भय नहीं है, ब्रह्मादि से अधिक सम्पत्ति के प्राप्त होने में और परमामृत ब्रह्मानन्द की प्राप्ति में भी उनको कुछ आनन्द नहीं मिलता ॥४७॥

[४८]

अलमलमति घोरानर्थकारीन्द्रियाणा-
मतिशयपरितोषै दुष्करै दुस्तरैश्च ।
विदधदिव सशोको येनकेनापि देह-
स्थितिमधिवस वृन्दारण्यमेकान्तरत्या ॥

अति घोर अनर्थ करने वाली इन्द्रियों को दुष्कर तथा दुस्तर उपायों से संतुष्ट करने का अब कोई प्रयोजन नहीं। देहयात्रा निर्वाह करने के लिये जिस किसी उपाय का अवलम्बन करके शोकातुर होते हुए एकान्तभावसे इस श्रीवृन्दाबन में निवास कर ॥४८॥

[४६]

लुठन् रासस्थल्यां निरवधि पठन् कृष्णचरितं
रटन् हा कृष्णेति प्रतिपदमटश्चापि परितः ॥
त्रुटन्नानाग्रन्थिः स्फुटदमलभावोऽश्रुनिवहै
र्नटन् गायन् वृन्दावनमति महान् पङ्किलयति ॥

जो (व्यक्ति) निरन्तर रासस्थली में लुण्ठन करता है, श्रीकृष्ण के चरित्रों का पाठ करता है, "हा कृष्ण" रटता है एवं (श्रीवृन्दाबन के) सर्वस्थानों पर भ्रमण करता है, उसके हृदय की नाना ग्रन्थियां (अविद्या, काम, कर्मादि) नाश होकर विशुद्ध भाव की स्फूर्त्ति होती है एवं वही अति भाग्यवान महापुरुष नृत्य तथा सङ्कीर्तन करते करते अश्रु-धारा से श्री-वृन्दाबन को पङ्कयुक्त (कीचयुक्त) करदेता है ॥४६॥

[५०]

उद्दामः काम एवेतर रसलवकस्पर्शमात्राऽसहिष्णु
नित्यं वर्द्धिष्णु रत्युच्छलित-रसमहाम्भोधि नित्यं च यत्र ।
यत् किञ्चिज्जङ्गमं स्थास्नु च परममहाश्चर्यनानासमृद्ध्या
शश्वद्वृद्ध्या स्वयं चानिशमुदित मिदं भातु वृन्दावनं मे ॥

जो (स्थान) उत्कट काम स्वरूप है, अन्य रसों के थोड़े स्पर्श मात्र को भी जो सहन नहीं करता, जिस स्थान पर नित्य वर्द्धनशील रति के द्वारा उच्छलित रसमहासमुद्र नित्य प्रवाहित होता है, जहां स्थावर जङ्गम समस्त वस्तुएं परम महाश्चर्यमय अनेक समृद्धि और निरन्तर वृद्धि के साथ रात-दिन प्रकाशित होती हैं—वही यह श्रीवृन्दाबन मेरे हृदय में प्रकाशित हो ॥५०॥

[५१]

तथा परमपावनं भुवि चकास्ति वृन्दावनं
यथा हरिरसे मनः स्वयमनङ्कुशे धावति ।
परन्तु यदि तद्गत स्थिरचरेषु नो कायवाङ्
मनोभि रपराधिता भवति बाधिता तत्वधीः ॥

जैसे स्वतन्त्र हरिरस में मन स्वयं ही धावित होता है, वैसे ही परम पावन श्रीवृन्दाबन पृथ्वीमण्डल में प्रकाशित होता है—परन्तु यदि श्रीवृन्दाबन के स्थावर जङ्गमात्मक वस्तुओं के प्रति काय-मन-वाक्य से अपराधी होकर तत्व (विचार) बुद्धि बाधित न हो। (अर्थात अपराधी होने से तत्व बुद्धि नाश हो जाती है जिससे श्रीवृन्दाबन के प्रकाश का अनुभव नहीं होता)॥५१॥

[५२]

मग्नं श्रीराधिकाश्रीमुरलीधरमहाप्रेमसिन्धौ निमग्नं
तद् गौरश्यामगात्रच्छबिमयजलधौ प्रोज्झितावारपारे।
शोभामाधुर्यपूर्णार्णवबूडितमहोमत्तमेतन्ममान्तः
श्रीवृन्दारण्यमेव स्फुरतु न कलितं माययाऽविद्यया च॥

अहो! श्रीराधा एवं श्रीमुरलीधर के महाप्रेमसिन्धु में मग्न एवं उस गौरश्याम विग्रह के कान्तिमय आर-पार-विहीन समुद्र में जो निमग्न है, तथा उनकी शोभा और माधुर्य के सागर में डूबा हुआ मत्त यह श्रीवृन्दाबन—जो माया एवं अविद्या का रचा नहीं, मेरे अन्तःकरण में स्फुरित हो॥५२॥

[५३]

वृन्दाबन मनुबिन्दाम्यहमपि देहं श्वशूकरादिनाम्॥
न पुनः परत्र सच्चित् सुखमयमपि दुर्लभं देवैः॥

श्रीवृन्दाबन के कूकर शूकरादि का शरीर भी धारण करूंगा, किन्तु और जगह देवताओं के लिये भी दुर्लभ सच्चिदानन्दमय शरीर को मैं नहीं चाहता॥५३॥

[५४]

श्रीवृन्दावनमध्ये बहुदुखेनापि यातु जन्मैतत्।
लोकोत्तरसुखसम्पत्त्यपि न चान्यत्र मे निमिषकम्॥

श्रीवृन्दाबन में अत्यन्त दुखों में ही मेरा यह जन्म बीत जाये, तथापि अन्यस्थान पर अलौकिक सुखसम्पत्ति एक निमिष काल के लिये भी प्रार्थना नहीं करूंगा ॥५४॥

[५५]

करतलकलितकपोलो गलदश्रु कृष्णकृष्णेति ।
विलपन् रहसि कदा स्यां वृन्दारण्येऽत्यकिञ्चनोधन्यः ॥

हथेली पर कपोल धर कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से "कृष्ण" "कृष्ण" कहकर विलाप करते करते कब श्रीवृन्दाबन के निर्जन स्थानपर अति दीन-भाव से रहकर मैं कृतार्थ होऊंगा ?

[५६]

मानापमानकोटिभि रक्षुभितात्मा समस्त-निरपेक्षः ।
वृन्दाबनभुवि राधानागरमाराधये कदा मुदितः ॥

कोटि कोटि मानापमान होने पर भी क्षुभित न होकर, किसी की भी अपेक्षा न करते हुए कब श्रीवृन्दाबनमें श्रीराधा-नागर की आनन्दपूर्वक मैं आराधना करूंगा ? ॥५६॥

[५७]

वृन्दावनैकशरण स्त्यक्त श्रुतिलोकवर्त्मसञ्चरणः ।
भावाद्धरिच्चरणान्तरपरिचरणाद्व्याकुलः कदा नु स्याम् ॥

अहो ! एकमात्र श्रीवृन्दाबन की ही शरण ग्रहण करके वेदमार्ग एवं लौकिक समस्त आचरण त्याग कर, कब भाव-पूर्वक श्रीहरि के चरणों की मानसी सेवा करके मैं व्याकुल होऊंगा ? ॥५८॥

[५८]

इह न सुखं न सुखमरे क्वापि वृथा न पत मोहजालेऽस्मिन् ।
अनुदिनं परमानन्दवृन्दावनं हि समाश्रयाद्यैव ॥

इस संसार में सुख नहीं है, अरे! कहीं भी सुख नहीं है। वृथा इस मोह जाल में मत फंस। आज ही नित्य परमानन्दमय श्रीवृन्दावन का सम्यक प्रकार से आश्रय ग्रहण कर ॥५८॥

[५६]

स्त्रीपुत्रदेहगेहद्रविणादौ मैव विश्वसीमूंढ ।
क्षणमपि नैव विचारय चारय वृन्दारण्यमुखं चरणौ ॥

हे मूर्ख! स्त्री, पुत्र, देह, घर, सम्पत्ति आदि का विश्वास मत कर, एक क्षण भी विचार न करके श्रीवृन्दावन की ओर पांव बढ़ा ॥५६॥

[६०]

राधाकृष्णविलासरञ्जितलतासद्मालिपद्माकर-
श्रीकालिन्दीतटीपटीरविपिनाद्यद्रीन्द्रसत्कन्दरम् ॥
जीवातु र्मम नित्यसौभगचमत्कारैकधाराकरं
नित्यानङ्कुशवर्द्धमानपरमाश्चर्यर्द्धिवृन्दावनम् ॥

श्रीराधाकृष्ण के विलास से रञ्जित लतागृहों एवं तड़ागों से. श्रीकालिन्दी के किनारों पर स्थितचन्दनवनादिकों से, एवं गिरिराज की सुन्दर सुन्दर गुफाओं से जो संशोभित है. जो एकमात्र सौभाग्य एवं चमत्कार की वर्षा करता है. तथा जो नित्य स्वतन्त्ररूप से वर्द्धनशील परम आश्चर्य की सम्मृद्धि से पूर्ण है—ऐसा श्रीवृन्दावन मेरी जीवन-औषध है ॥६०॥

[६१]

शरीरं श्रीवृन्दावनभुवि सदा स्थापय मनः
सदा पार्श्वं वृन्दावनरसिकयो र्न्यस्य भजने ।
वचस्तत्केलीनामनवरतगाने रमय तत्
कथापीयूषादौ श्रवणयुगलं प्रीतिविकलम् ॥

शरीर को सदा श्रीवृन्दाबन भूमि में स्थिर रख, मनको श्रीवृन्दाबन रसिकयुगल (श्रीराधाकृष्ण) के निकट भजन में लगा. उनकी लीला गान में निरन्तर वाणी का प्रयोग कर एव प्रेम से व्याकुल कानों को उनके कथामृत से तृप्त कर ॥६१॥

[६२]

प्रसीद श्रीवृन्दाबन वितनु मां स्वैकतृणकं
यदङ्घ्रिस्पर्शात्युत्सवमनुभवे त्वयुदितयोः ।
तयोर्गौरश्यामाद्भुतरसिकयूनो र्नवनव-
स्मरोत्कण्ठाभाजो र्निभृतवनवीथ्यां विहरतोः ॥

हे वृन्दाबन ! अपना एकमात्र क्षुद्र तृण कृपाकर मुझे दान करो, जो तुम्हारे बीच विराजमान नव नव कामोत्कण्ठा-युक्त, निर्जन वनपथ में बिहार करने वाले उन गौरश्यामवर्ण अद्भुत रसिकयुगल के चरणकमलों के स्पर्श का सुख अनुभव करता रहता है ॥६२॥

[६३]

न कालिन्दीमिन्दीवरकमलकह्लारकुमुदा-
दिभि र्नित्योत्फुल्लै र्मधुपकुलझङ्कारमधुरैः ।
सहालि श्रीराधामुरलीधरकेलिप्रणयिणी
मपश्यन् यो वृन्दावनपरिसरे जीवति स किम् ? ॥

नीलोत्पल, कमल, कह्लार और कुमुदनी आदि पुष्पों से प्रफुल्लित, भंवरों की गुञ्जार से मधुरा एवं जिसमें सखियों के सहित श्रीराधा-मुरलीधर केलि करते हैं—ऐसी श्रीयमुना जी के श्रीवृन्दाबन में जो व्यक्ति बिना दर्शन किये जीवित रहता है—उसे क्या लाभ ? अर्थात उसका जन्म वृथा है ॥६३॥

[६४]

वृन्दारण्यमिलत्कलिन्दतनयां वन्देऽरविन्देन तां
नानारत्नमयेन नित्यरुचिरा मानन्दसिन्धु-सुताम् ।
रम्यां चान्यविचित्रदिव्यकुसुमै गंम्यां न सम्यक् त्रयी-
मौलीनामापि मत्तषट्पदखगश्रेणीसुकोलाहलाम् ॥

श्रीवृन्दाबन से संयुक्त उस श्रीयमुना को मैं नमस्कार करता हूँ, जो—अनेक प्रकार के रत्नमय कमलों से नित्य मनोहरा होरही है, आनन्द समुद्र की कन्या है, अन्यान्य विचित्र दिव्य कुसुमों से सुशोभिता है; ऋग, साम, यजु—वेदत्रय-शिरोमणि भी जिसकी सम्यक् महिमा को नहीं जान सकते एवं मत्त मधुकरों तथा विविध पक्षियों के कोलाहल से मुखरित हो रही है ॥६४॥

[६५]

श्रीवृन्दाबनवाहिनी तरणिजा स्वानन्दसन्दोह वाः-
पूरा रत्नघटामयद्वयतटा सामोत्तरङ्गध्वनिः ।
आवर्त्तायितमृगगणं विदधती हंसैश्चकारण्डवै
र्दात्यूहैरथसारसादिभि रपि ध्येया हरेः प्रेयसी ॥

श्रीवृन्दाबन में बहनेवाली श्रीयमुना स्वानन्दराशि-रूप जल के प्रवाह से युक्त है, इसके दोनों तीर रत्नमय हैं, उच्चतरङ्गों की ध्वनि सामवेद का गानस्वरूप है, जल के आवर्त्त (चक्र) में घिरे हुए पक्षियों की भी रक्षा करने वाली है, एवं हंस, कारण्डव (हंस विशेष) दात्यूह (पक्षी विशेष) सारस आदि पक्षी जहां विहार कर रहे हैं—ऐसी श्रीहरि की प्यारी श्रीयमुना ध्यान करने योग्य है ॥६५॥

[६६]

जलक्रीड़ाकाले   कनककमलिन्येकविपिने
निलीना श्रीराधा यदधिकमलं चुम्बति हरौ ।
स्व वक्त्राब्जभ्रान्त्या हसितमथ नालं स्थगयितु
हसित्वा कान्तेनाभ्रियत हसितालीपरिकरा ॥

जलक्रीड़ा के समय श्रीराधा एक स्वर्णकमलों के वन में छिप गईं, जब श्रीहरि अपनी श्रीराधा के सुन्दर मुखकमल के भ्रम से प्रति कमल को चुम्बन करने लगे, तब श्रीराधा हंसी को न रोक सकीं, सखियां एवं सब परिकर जब हंस पड़ा तब कान्त श्रीश्यामसुन्दर ने हंसते हंसते प्रियतमा (श्रीराधा) को पकड़ लिया ॥६६॥

[६७]

विदूरं सिन्दूरं गतमपि विलेपाञ्जनमभूत्
स्रजो त्रुट्यन्मुक्तावलि रपि दृशोर्द्वन्द्वमरुणम् ।
विहारैः कालिन्द्याम्भसि यदपि वृन्दाबनवने
तथाप्यासाद्राधा हरिर्वपुषि काऽप्येक सुषमा ॥

श्रीवृन्दावन में श्रीकालिन्दी के जल में विहार करते करते श्रीराधा जी का सिन्दूर दूर होजाने पर भी वह अञ्जन से विलिप्त होरही है; माला के मुक्ता टूट जाने पर भी दोनों नेत्र लाल होरहे हैं, तथापि (भूषणादि छिन्नभिन्न होजाने पर भी) श्रीहरि के वक्षस्थल पर श्रीराधा किसी एक अनिर्वचनीय शोभायुक्त विराजमान हैं ॥६७॥

[६८]

सिञ्चन्नुच्चैः स्वयं श्रीव्रजनृपतिसुतो बल्लभा स्वप्रियाली-
वृन्दैः सम्भूय बत्सेचनभरमसहं मन्यमानः स मग्नः ।

स्फीतश्रोणयूरुजंघाचरणयुगपरामर्श लब्धाति हर्षः
कालिन्द्यामिन्दुकोटिच्छबि बहु हासतो दूर उन्मज्य रेजे ॥

श्रीव्रजराजनन्दन के स्वयं जोर से जल फेंकने पर बल्लभा (श्रीराधा) और उनको प्रिय सखियों ने इकट्ठा मिल कर जल फैंका; उसे सहन न कर सकने पर श्यामसुन्दर ने जल में डुबकी लगाली। पृथु नितम्ब, विशाल जङ्घा एवं चरण युगल का स्पर्श प्राप्त कर अति प्रसन्न होकर यमुना जल पर कोटि चन्द्रों की कान्ति को निन्दित करनेवाली मुस्कान को विस्तार करते हुए कुछ दूर जलसे बाहर आकर (श्यामसुन्दर) शोभा पा रहे हैं ॥६८॥

[६९]

राधाकृष्णावतिरतिरसोत्क्येन मग्नौ सहैव
कालिन्द्याऽप्राकृतनिजजले देशआस्तीर्णपद्मे।
दीर्घं कालं सुरतसमरावेशत स्तौ यदाऽऽस्तां
चक्रुः प्राणद्वयविचयनं कातरास्तर्हि सख्यः ॥

अतिशय रतिरस की उत्कण्ठा में श्रीराधाकृष्ण ने कालिन्दी के अप्राकृत निजजल में इकट्ठे निमग्न होकर एक कमलों से घिरे हुए स्थान पर सुरत-समरावेश में बहुत समय जब व्यतीत कर दिया, सखीगण कातर होकर प्राणप्रियतम-युगलकिशोर को ढूंढ़ने लगीं ॥६९॥

[७०]

मिथः कमलकैरवाद्युदितहाससङ्गे क्षिपन्
मुखेन हरि मुद्रणायुजि कृताम्बुगण्डूषकम्।
समुद्य जितकाशि तत् क्वचन मग्नमुत्थापयद्
द्वयं तरणिजाम्भसि स्फुरति गौरनीलं महः ॥

(कभी) हंसते हंसते कमल कैरवादि पुष्प एक दूसरे के अङ्गों पर मारते हैं, (कभी) निमीलित नेत्रों से एक दूसरे के मुख में मुख के द्वारा जलदान करते है, कोई एक (दूसरे पर) जल वर्षा कर जीत जाता है और किसी एक के जल में डुबकी लेने पर दूसरा उसे उठाता है—इस प्रकार गौरश्याम-वर्ण दो ज्योतियां यमुना जल में प्रकाशित होरही हैं लीला विस्तार कर रही हैं ॥७०॥

[७१]

हेमाद्यम्बुजकोरकादिसलिलं पीयूषसारश्चैव-
द्राक्षाक्षीररसादिमत्तटयुगं नानामणिर्निर्मितम् ।
खेलद्दिव्यसुरत्नमीननिकरास्फालेन चित्रायितं
नानारत्नविचित्रतीर्थविलसत्सोपानमत्यद्भुतम् ॥

जल में स्वर्ण रंग के पद्म एवं कलियां आदि शोभित हैं, अनेक प्रकार के मणि-रत्नों से बने हुए दोनों तट अमृत-सार उन्मत्त करने वाले द्राक्षादि के क्षीर-रसादि से सने हुए हैं एवं क्रीड़ामय दिव्य सुन्दर मछलियोंके उच्छलने से आश्चर्य-जनक प्रतीत होते हैं. अनेक रत्नमय विचित्र घाट बने हुए हैं एवं उनमें अति अद्भुत सीढ़ियां शोभा देरही हैं ॥७१॥

[७२]

नानाश्चर्यसुपुष्पितद्रुमलताकुञ्जै र्महामञ्जुलं
कर्पूरोज्ज्वलवालुकं च पुलिनं विस्तारसत्सौरभम् ।
तीरेतीरइतस्ततः सचकितोन्मीलन्मृगीयूथकं
दिव्यानेककदम्बचम्पकवनामोदः प्रसृतोऽभितः ॥

अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक सुन्दर पुष्पों से लदे हुए वृक्ष-लताओं की कुञ्जों से (श्रीयमुना) मनोहर होरही है,

पुलिनों में कर्पूर की भांति उज्ज्वल बालु शोभा दे रही है एवं (चारों दिशाओं में) सुन्दर सौरभ फैल रही है। तीर तीर पर इधर उधर चकित होकर हरिणीगण घूम रही हैं; चारों दिशाओं में दिव्य दिव्य कदम्ब, चम्पक के वृक्षों की सुगन्धि छा रही है ॥७२॥

[७३]

अत्युच्चैः प्रसरत् परागपटलं प्रोड्डीयमानद्विजं
वातोन्मादमितस्ततोऽति मधुरोदारान्तरीयोज्ज्वलम् ।
यस्या गाधमगाधमन्तरुदयत् कुञ्जाम्बु सा राधिका-
कृष्णानन्दविवर्द्धिनी बहुसुखं कृष्णाप्रपुष्णातु वः ॥

(जिस श्रीयमुना के किनारे पर) पुष्पधूलि बहुत ऊंची उड़ रही है, जिससे पक्षी समूह उड़ने लगते हैं। वायु के द्वारा आगे पीछे हिलोर लेने से अति मधुर उदार एवं उज्ज्वल वस्त्र के रूप में जो प्रतीत होती है एवं जिसके (कहीं) थोड़े और (कहीं) अगाध जल में (किनारे की) कुञ्जें प्रतिबिम्बित होरहीं हैं—वही श्रीराधाकृष्ण के आनन्द को बढ़ाने वाली श्रीयमुना बहुत सुखपूर्वक तुम्हारा पालन करें—रक्षा करें ॥७३॥

[७४]

कूजद्भिः कलहंससारसकुलैः कारण्डवै मण्डितं
संप्रीणन्नव पुण्डरीकनिकरामोदेन दिङ्मण्डलम् ।
कह्लारोत्पलपङ्कजादिकवने भृङ्गीभि रङ्गीकृतं
गीतं मत्त मधुव्रतैः सह मनाक् कर्णे जगन्मोहनम् ॥

(श्रीवृन्दावन) शब्दायमान कलहंसों, सारसों एवं कारण्डवों से शोभित हो रहा है, दशों दिशाएं नवीन नवीन श्वेत कमलों के समूह की सौरभ से सुवासित हो रही हैं,

कह्लार, उत्पल, पङ्कजादि के बन में भ्रमरीगण मत्त मधुकरों के साथ मिलकर मधुर एवं जगत को मोहित करने वाला सङ्गीत अलाप रही हैं ॥७४॥

[७५]

श्रीमद्वृन्दावनेऽस्मिन् कति कति नु सरः सिन्धुवापीतड़ागा
राधाकृष्णाङ्गरागाञ्चितमधुरजला दिव्यदिव्या न सन्ति ।
आश्चर्याः केलिसाराः कति कति न मणिस्वर्णभूभृत्किशोराः
प्रोज्जृम्भन्ते न भासः क्षितिषु कति महामोदमेदस्विनीषु ॥

इस श्रीवृन्दावन में श्रीराधाकृष्ण के अङ्गराग से सने हुए मधुर जल से पूर्ण कितने कितने नहीं दिव्य-दिव्य सरोवर, सिन्धु (नदी) वापी और पुष्करणियां हैं ? अर्थात अनेक ही हैं। कितने कितने नहीं आश्चर्यजनक विलास करने योग्य मणिमय एवं स्वर्णमय छोटे छोटे पर्वत विराजमान हैं ? इस महानन्दरूप मेदस्विनी पृथ्वीपर कितनी-कितनी नहीं ज्योतियां इधर उधर विकीरण हो रही हैं ? ॥७५॥

[७६]

प्रेमान्धं पशुपक्षिभूरुहलताकुञ्जादिसत्कन्दरा
वापीकूपतड़ागसिन्धुसरसि-रत्नस्थलीवेदिभिः ।
कालिन्द्याः पुलिनेन तत्स्थसकलेनाशेषवृन्दावनं
राधामाधव-रूपमोहितमहं ध्यायामि सच्चिदघनम् ॥

पशु पक्षी, वृक्षलता, कुञ्जादि, कन्दरा, वापी कूप तड़ाग, सिन्धु, सरोवर एवं रत्नस्थली-वेदी के सहित कालिन्दी-पुलिन एवं सब कुछ, जो भी वहां विद्यमान है—श्रीराधामाधव के रूप में मोहित एवं प्रेम में बेसुध होरहा है—सच्चिदघन समस्त श्रीवृन्दावन का मैं ध्यान करता हूं ॥७६॥

[७७]

अभ्यङ्गं वसनान्तराप्यभिषरं किञ्चिच तीर्थक्रिया
संभुक्तिं वरगन्धमाल्यविलसत्ताम्बूलपर्णग्रहम् ।
सङ्गीतानुभवं सहैवशयनं श्यामेन सम्वाहनं
श्रीसख्या पदयोः स्मर व्रजवधूत्तंसस्य वृन्दाबने ॥

तैलादि मर्दन, बिना वस्त्र स्नान, तीर्थक्रियादि, भोजन, उत्तम सुगन्धि-माल्यदि तथा मधुर पान-वीटिकादि का ग्रहण, सङ्गीतानुभव एवं श्यामसुन्दर के साथ एकत्र शयन तथा व्रज-बधू-शिरोमणि श्रीराधा के चरणों की श्रीसखियों के द्वारा सेवा आदि—श्रीवृन्दाबन की इन लीलाओं का स्मरण कर ॥७७॥

[७८]

मोहिन्यामपि नास्ति मेऽद्भुतमतिः का पार्वतीकोर्वशी
कावाऽन्या वरवर्णिनीरतियुता यच्चेटिकाङ्गच्छटाम् ।
एकामप्यनुपश्यतो हृदि महासम्मोहनश्यामल-
स्वान्तात्यन्तविमोहिनी स्फुरतु मे वृन्दाबनाधीश्वरी ॥

जिसकी दासी की एकबार अङ्ग छटा को देख कर पार्वती, उर्वशी तथा और किसी रतिमती सुन्दरी की तो बात ही दूर—स्वयं मोहिनी में भी मेरी बुद्धि आश्चर्य नहीं मानती, महा सम्मोहन श्रीश्यामसुन्दर के मन को भी मोहित करने वाली वह श्रीवृन्दावनाधीश्वरी(श्रीराधा)मेरे हृदयमें स्फुरित हों ।

[७९]

श्रीराधाचरणच्छटाम्बुधिघनं तद्भक्तिभावोदय-
द्रोमाञ्चं तत एव शिक्षित मभिव्यञ्जत् सुसङ्गीतकम् ।
चित्रं तत् प्रियतत् प्रसाद-वसनालङ्कारहारस्रजं
श्रीवृन्दाविपिने कदान्वनुभवाम्यात्मेष्टतत्त्वं वरम् ॥

श्रीराधाजी के चरण जो कान्ति के समुद्रघन हैं, उन की भक्ति एवं भाव उदय होने से पुलकित शरीर होकर, उन से सीखी हुई सुन्दर सङ्गीत विद्या को प्रगट करता हुआ एवं उनके प्रियतम श्रीश्यामसुन्दर तथा उनके (श्रीराधा के) प्रसाद, वसन, अलङ्कार, हार और माला को (अथवा श्रीराधा के विचित्र प्रसादी वसन, अलङ्कार, हार और मालादि को) धारण करता हुआ मैं अपनी अभीष्ट वस्तु को कब इस श्रीवृन्दाबन में अनुभव करूंगा ? ॥७९॥

[८०]

स्निग्धस्वर्णसुगौरसुन्दरवपुर्लावण्यवन्याकृता-
द्वैतं नूतनयौवनप्रतिपदाश्चर्याङ्गभङ्गीशतम् ।
श्यामेन्दुप्रथमानुरागवहलोर्मीभि र्महान्दोलितं
श्रीवृन्दाबनकुञ्जवीथिषु कदा दिव्यं तदीक्षे महः ॥

स्निग्ध-स्वर्ण-सुगौरकान्तियुक्त सुन्दर देहधारी, लावण्य वन्या के साथ अद्वयी भाव को प्राप्त, (मूर्त्तिमती लावण्यवन्या) नूतन यौवन के प्रतिपद में ही आश्चर्यमय शत शत अङ्ग भङ्गी प्रकाश करने वाली, श्यामचन्द्र के नवीन अनुराग के आधिक्य रूप तरङ्गों से जिनका चित्त महा आन्दोलित हो रहा है, उस दिव्य ज्योति (श्रीराधा) के कब श्रीवृन्दाबन के पथ पथ में मैं दर्शन करूंगा ? ॥८०॥

[८१]

एकं वीक्ष्य जिहेति यस्य कवरी मन्यन्मुखं मोहनं
किञ्चिद् वक्षसिजौ दृशौ किमपि यद्दन्ताऽधरं किञ्चन ।
किञ्चिद् यद्द्युतिमञ्जरी रितिमहाश्चर्यं निकुञ्जोदरे
श्यामोरः स्थलभूषणं स्फुरति मे तद्धेमगौरं महः ॥

[८२]

व्यञ्जत् कैशोरमङ्गं कनकरुचिनवानङ्गभङ्गीतरङ्गं
नित्याश्चर्यैकशोभाप्रसरमतिमहाप्रेमवैवश्यमुग्धम् ।
दिव्यस्रग्वस्त्रभूषाद्यहह सुभगयत् स्वीयलक्ष्म्या दधत्तत्
चित्रीभूतालिवृन्दं मिलतु निजधनं धामवृन्दाबनान्तः ॥

जिसके अङ्ग नवकिशोर हैं, जिसकी स्वर्णवत् कान्ति है, जो नवीन काम की भङ्गी की चञ्चलतायुक्त है, जिसकी नित्य ही आश्चर्यमय शोभावृद्धि है एवं जो अति महान प्रेम-वैवश्य से मन को हरण करती है—अहो ! जिसने अपनी शोभा से दिव्य माला, वस्त्र, भूषणादिकों को अशेष सौभाग्य मण्डित किया है एवं सखियों को भी जिसने चित्रवत् कर दिया है, वह मेरा सर्वस्व धन श्रीराधाजी श्रीवृन्दाबन धाम में मुझे दर्शन दें—यही प्रार्थना है ।।८२।।

[८३]

नवरसिककिशोरे नूतनप्रेमपूरे नवरसमयवृन्दारण्यवीथिविहारे ।
नवनवपुरुशोभामाधुरीणां धुरीणे
कनकमरकताभे ज्योतिषी मे हृदि स्ताम् ॥

नवीन प्रेम प्रवाह करनेवाले, नवीन रसमय श्रीवृन्दाबन के पथ में विहार करने वाले, नित्य नवीन महा आश्चर्यमय शोभा-माधुर्यराशि के धारण करने वाले, स्वर्ण एवं मरकत-मणिवत् प्रभा वाले—ज्योतिर्मय नवरसिक श्रीयुगलकिशोर मेरे हृदय में बसे रहें ।।८३।।

[८४]

बहुविरचितवेशसोरुदेशे निवेश्य
स्फुटपुलकमजस्रं चुम्बतः श्लिष्यतश्च ।

ननु कथमपि तल्पे न्यस्यतोऽङ्गं प्रियायाः
परिचर चरणाब्जं राधिकानागरस्य ॥

बहुविधि वेशधारी श्रीराधानागर प्रिया को किसी तरह शय्या पर सुलाकर ऊरूदेश में स्थापन करके रोमाञ्चित होकर (प्रिया को) निरन्तर चुम्बन और आलिङ्गन कर रहे हैं—उनके चरणकमलों की सेवा कर ॥८४॥

[८५]

व्रततीभवनमध्ये गन्धताम्बूलमाल्यै-
रतिमृदुलविलेपैः साधुसम्बीजनेन ।
तदतिमदनमुग्धं धामयुग्मं किशोरं
परिचर हृदि गौरश्यामलं दास्यलास्यः ॥

लतागृह में विराजमान अत्यन्त काममुग्ध गौरश्याम युगलकिशोर की—गन्ध-ताम्बूल-माला आदि अर्पण के द्वारा, अति मृदुल विलेपनादि एवं उत्तम बीजना के द्वारा दास्यरस में आविष्ट चित्त होकर सेवा कर ॥८५॥

[८६]

कैशोराद्भुतरूपभङ्गिमधुरै रङ्गैरनङ्गात्मकं
कुर्वद् विश्वमतिप्रमुग्धमुरलीवक्त्रेन नित्याद्भुतम् ।
सिञ्चत् कोमलकाञ्चनद्रवरुचां वीचीभि राशादश
प्रेमोत्कण्ठ्यभरेण तद्भज मनः श्रीधामवृन्दावनम् ॥

हे मन ! जो (श्रीवृन्दाबन धाम) किशोर अवस्थायुक्त अद्भुत रूप भङ्गी व माधुर्य युक्त अति मनोहर मुरलीवदन (श्रीश्याम सुन्दर) के द्वारा विश्व को नित्य ही अद्भुत कामात्मक कर रहा है एवं जो धाम (श्रीराधा की) कोमल तप्त-स्वर्ण

कान्ति की तरङ्गों से दशों दिशाओं को सिञ्चन कर रहा है—प्रेम-उत्कण्ठापूर्वक उसी श्रीधामवृन्दावन का ही भजन कर।

[८७]

अयं बृहदधीश्वरो नगणिताऽवतारोऽप्यसौ
श्रितो यदुपुरीमयं मधुपुरीञ्च दिव्याकृतीः ।
व्रजे च मधुरापुरी-वन वरे न गो-गोपिका—
सुहृद्भि रहरन्मनो मम तु राधिका-कुञ्जगः ॥

यह (श्रीवृन्दाबनचन्द्र) अगणित अवतारों के अवतारी महाधीश्वर ही हों अथवा दिव्य मूर्त्ति धारण कर द्वारका और मथुरा में रहें—(मेरा मन उनमें हरण नहीं होता)और मथुरा पुरी के श्रेष्ठ वन—व्रज में भी जब गौओं, गोपिकाओं एवं सखाओं से घिरे रहते हैं, (तब भी मुझे इतना आनन्द नहीं मिलता) किन्तु ये जब श्रीराधा की कुञ्जों में जाते हैं—तब ही मेरा मन हरण हो जाता है ॥८७॥

[८८]

कामात्मज्योतिरेकं सुविमलविमलं प्रोज्ज्वलप्रोज्ज्वलं यन्
माधुर्यापारसिन्धोरविमधुरतरं मादकं मादकानाम् ।
पारावारातिशून्यं सकलसुखचमत्कारविस्मारकं तन्
मध्ये वृन्दावनं तद्व्रततिगृहगतौ पश्य मुग्धौ किशोरौ ॥

श्रीवृन्दाबन—एकमात्र कामात्मक-ज्योति का ही प्रकाशक है, सुविमल से भी सुविमल है, प्रोज्ज्वल से भी प्रोज्ज्वलतर है, माधुर्य के अपार समुद्र से भी मधुरतर है, मादकता को भी उन्मत्त करने वाला है, पारावार (सीमा) रहित है, समस्त सुखों की चमत्कारता को भुला देने वाला है; इसके लतागृहों में विराजमान परम मनोहर श्रीयुगलकिशोर के दर्शन कर।

[८९]

मधुरमधुरपूर्णप्रेमपीयूषसिन्धो
र्घनमिदमतिरम्यं भाति वृन्दावनाख्यम् ।
तदधि ललितगौरश्यामधाम स्मरामः
स्मर-विवशकिशोरद्वन्द्वमानन्दकन्दम् ॥

मधुर से सुमधुर, पूर्णप्रेमामृत-समुद्र का घनीभूत स्वरूप अति रमणीय यह श्रीवृन्दावन धाम प्रकाशित होरहा है। इस में काम विवश, आनन्दकन्द सुललित गौरश्याम श्रीयुगल-किशोर के हम दर्शन करते हैं ॥८९॥

[९०]

आत्मेश्वरीपरमगूढतरेङ्गितज्ञं तत्तत् प्रियप्रणयलोल्यभरस्वभावम् ।
स्वात्मैकपक्षवचनाचरणप्रवीणं वृन्दावने स्मर निजं स्मरखेलतत्त्वम् ॥

श्रीवृन्दावन में प्राणेश्वरी के परमनिगूढ़तर इङ्गित को समझने वाले, प्रियप्रियतम के उस प्रणय की चञ्चलतामय स्वभावयुक्त अपने यूथ के (परिकर के) वचनानुकूल आचरण करने में चतुर, निज काम लीला-परायण तत्व (स्वरूप) को स्मरण कर ॥९०॥

[९१]

उत्फुल्लद्रुमवल्लिमञ्जुलतरं शिञ्जत् षड़ङ्घ्रिज्ज्वलन्
नानारत्नमयस्थली तति लसच्छ्रीपुञ्जकुञ्जावलि ।
नृत्यन्मत्तमयूरवृन्दमभितः पक्षीन्द्र-कोलाहलं
राधाकृष्णविहारकौतुकमयं ध्यायामि वृन्दावनम् ॥

प्रफुल्लित वृक्षलताओं की शोभा से जो मञ्जुलतर हो रहा है, जहां भ्रमर-समूह गुञ्जार रहे हैं, जाज्वल्यमान नाना रत्नमय स्थलों से जो भूषित है, अनेक सौन्दर्ययुक्त कुञ्जों से जो मण्डित है, जहां मत्त मयूरगण इधर उधर नृत्य एवं पक्षिराज

कोलाहल कर रहे हैं तथा जो श्रीराधाकृष्ण के अशेष विहार-कौतुक से परिपूर्ण है—ऐसे श्रीवृन्दाबन का मैं ध्यान करता हूँ ॥६१॥

[६२]

तत् कालिन्दीविपुलपुलिनं सा च वृन्दाबनश्रीः
सा सुच्छायानिविड़निबिड़ा श्रीकदम्बद्रुमाणाम् ।
सा वैदग्धीमयनववयः श्रीसखीमण्डली ते
गौरश्यामे रसिकमहसी कस्य नो मोहनाय ॥

वह कालिन्दी के विशाल पुलिन, वह वृन्दाबन की शोभा, वह सुन्दर कदम्ब वृक्षों की घनी घनी सुशीतल छाया, वह वैदग्धीमय यौवनयुक्त शोभामय सखी मण्डली, एवं वह गौरश्याम रसिक युगलकिशोर किसका मन नहीं मोहित करते—सबका मन मोहित करते हैं ॥६२॥

[६३]

प्रत्यङ्गं दिव्यवासः प्रसरति मधुराश्चाति निर्भान्ति भासः
प्रेम्नो नानाविकाराः प्रतिपदमधिको माधुरीणां प्रवाहः ।
सौन्दर्याम्भोधि भूमा निरवधि रति वर्द्धिष्णु कन्दर्प लौल्यं
वृन्दारण्येशयोर्मे हृदि दधात पदं तान्नमो भूरिभागान् ॥

जिनके प्रति अङ्ग से दिव्य सुगन्धि फैल रही है, अति मधुर प्रभा राशि का प्रकाश हो रहा है, प्रति पद में ही प्रेम के नाना विकार और माधुर्य का प्रवाह वर्द्धमान हो रहा है, सौन्दर्य समुद्र की पराकाष्ठा एवं निरन्तर रति को बढ़ाने वाला कन्दर्प चाञ्चल्य प्रगट होरहा है, जिन्होंने इन श्रीवृन्दाबन के अधीशयुगल (श्रीराधाकृष्ण) के चरणकमलों को हृदय में धारण कर लिया है—उन भाग्यवान पुरुषों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥६३॥

[६४]

गौरश्यामसुनागरदिव्यकिशोरद्वयं सदा यत्र ।
नवनवकेलिविलासैर्विहरति वृन्दाबनं तदेव भज ॥

जहां गौरश्याम चतुरशिरोमणि दिव्य युगलकिशोर सदा नवीन नवीन केलि-विलासादि से विहार कर रहे हैं— उसी श्रीवृन्दाबन का ही भजन कर ॥६४॥

[६५]

वृन्दावनमिव वृन्दाबन मति मधुरं तदेव वन्देऽहम् ।
राधाकृष्णाविव तौ राधाकृष्णौ सदा रतौ यत्र ॥

जहां श्रीराधाकृष्णवत् ही (अतुलनीय) श्रीराधाकृष्ण सदा रमण करते हैं (अथवा आसक्तचित्त होकर विराजते हैं) उसी अति मधुर श्रीवृन्दाबनवत् श्रीवृन्दाबन को मैं बन्दना करता हूँ ॥६५॥

[६६]

ज्योतिः किञ्चन जाज्वलीति परमं मायागुणेभ्यः परं
सान्द्रानन्दमनन्तपारममलं विद्यारहस्यं महत् ।
आद्यप्रेमरसात्म तत्र सुचमत्कारां महामाधुरी-
धारां विभ्रदुदेति धामपरमभ्राजिष्णु वृन्दाबनम् ॥

मायिक तीन गुणों के पार कोई एक (अनिर्वचनीय) परम (ब्रह्म) ज्योति प्रकाशित है, वह (ब्रह्म) गाढ़ानन्दात्मक है, अपार है, अमल है, विद्या रहस्य से पूर्ण एवं महत् है। उसके ऊपर आद्यप्रेम रसात्मक (शृङ्गाररसात्मक) सुचमत्कार-जनक महामाधुर्यराशियुक्त परम दीप्तिमय श्रीधाम वृन्दाबन विराजमान है ॥६६॥

[६७]

तत्राश्चर्यफलप्रसूनभरिते राश्चर्यखेलं खग-
व्रातानां परितो महाकलकलैः कर्णामृतौघोपमैः ।

माध्वीमत्तमधुव्रताऽऽवलिकलध्वानै र्मनोहारिभि-
र्दिव्यानेकलतामहीरुहगणैः कृष्णप्रियै र्मण्डिते ॥❀

आश्चर्यमय फल फूलों से पूर्ण चारों ओर आश्चर्यमय क्रीड़ा-परायण पक्षियों की कानों को अमृततुल्य महा कलकल ध्वनि से मुखरित, मकरन्द पान करने में उन्मत्त भंवरों को मनोहारी मृदुल मधुर ध्वनि संयुक्त, श्रीकृष्ण के प्रिय दिव्य दिव्य अनेक वृक्ष लताओं से भूषित—॥६७॥

[६८]

श्रीकृष्णप्रियदिव्यगन्धतुलसीभेदै रनन्तै स्तथा
सन्तानै र्हरिचन्दनै रगणितैः कल्पद्रुमाणां वनैः ।
दिव्यानेकसुपारिजातविपिनै र्मन्दारवृन्दै रपि
भ्राजिष्णौ हरिवल्लभैश्च बहुशो नीपैः कदम्बै र्वृते ॥

अनन्त अनन्त श्रीकृष्णप्रिय दिव्य सुगन्धियुक्त नाना प्रकार के तुलसी वृक्षों से, अनगणित सन्तान, हरिचन्दन तथा कल्पवृक्षों के बनों से, दिव्य दिव्य अनेक सुन्दर पारिजात कानन व मन्दार वृक्षों के द्वारा शोभित एवं श्रीहरिवल्लभ नीप-कदम्ब आदि वृक्षों से मण्डित—॥६८॥

[६९]

तत्तत् काञ्चनहैरमारकतलसद् वैडूर्य वर्यस्थली-
रङ्गे मत्तशिखण्डिमण्डलमहानन्दस्फुरत्ताण्डवे ।
नानाचित्रमृगीगणैः सचकिता लोकेन चेतोहरैः
शोभां बिभ्रति सर्वतः प्रसृमवानन्तच्छटासौरभे ॥

❀ इस तीसरे शतक के ६७ श्लोक से चतुर्थ शतक के १७ श्लोक तक कुलक है (अर्थात इनमें परस्पर सम्बन्ध है)

स्वर्ण, हीरा, इन्द्रकान्त खचित वैदूर्य मणियों से बने हुए सुन्दर रङ्गमञ्चों से, मत्त मयूरों के महा-आनन्द जनक ताण्डवनृत्य से, विचित्र हरिणीगण के मनोहारी सचकित दृष्टिपात से, सब दिशाओं को सुवासित करने वाले अनन्त सुगन्धित द्रव्यों से शोभित—॥९९॥

[१००]

कह्लारोत्पलपुण्डरीककुमुदाद्याश्चर्यपुष्पश्रिया
माद्यच्चित्रविहङ्गयूथरचितात्यानन्दकोलाहलैः ।
दिव्यानेकसरित्सरोभि रसकृच्छ्रीराधिकाकृष्णयो
राश्चर्यैः कलकेलिभिः सुमधुरे तत् प्रेमसारात्मभिः ॥

कह्लार, उत्पल, पुण्डरीक, कुमुदादि आश्चर्यमय फूलों से शोभित होने के कारण मत्त विचित्र पक्षियों के आनन्द कोलाहल से मुखरित, दिव्य दिव्य अनेक नदी सरोवरों से युक्त एवं श्रीराधाकृष्ण के प्रेमसारात्मक अति आश्चर्यजनक रसमय केलिविलासादि के द्वारा सुमधुर—॥१००॥

[१०१]

जातीकाननयूथिकावननवप्रोत्फुल्लमल्लीवनै
र्वासन्तीनवकेतकीवननवश्रीमालतीकाननैः ।
यावन्त्यावनझिण्टिकानवलसच्छेफालिकाकाननै
रुन्मीलन्नवमालिकानववनैः सुस्वर्णयूथीवनैः ॥

जाती वन, यूथिकावन, नवीन प्रफुल्लित मल्लिका के बनों से; बासन्ती बन, नव केतकी बन एवं नव सुन्दरता पूर्ण मालतीके बनों से; यावन्त्या बन, झिण्टी बन, नवशोभित शेफालिका बन, विकसित होने वाले नव मल्लिका के नवीन बनों से एवं सुन्दर स्वर्णयूथिका के बनों से शोभित—॥१०१॥

[१०२]

पुन्नागैः करवीरकै र्मरुवकैः सत्कर्णिकारै र्लसत्
कूजैः कुन्दवनै रशोक वकुलै र्भूचम्पकै श्चम्पकैः ।
अम्लानैः स्थलपङ्कजै र्दमनकै र्दिव्यैः शिरीषद्रुमैः
सर्वर्त्तुप्रविकाशिभि र्नवनवामोदै र्मनोहारिणि ॥

पुन्नाग, करवीर, मरुवक, सुन्दर कर्णिकार, मनोहर कुञ्ज, कुन्दबन, अशोक, वकुल, भूमिचम्पक, चम्पक, अम्लान स्थलपद्म, दमनक, दिव्य दिव्य शिरीष वृक्ष, सब ऋतुओं में खिलने वाले नवीन नवीन सुगन्धियुक्त पुष्प वृक्षों के द्वारा मनोहारी—॥१०२॥

[१०३]

कह्लारोत्पलपद्मकैरवमुखाऽसंख्यप्रसूनैः स्फुटैः
हंसैः सारसचक्रवाकमिथुनैः कारण्डवाद्यैः खगैः ।
अत्यानन्दमदोरुखेलनकलध्वानै र्महारम्यया
भृङ्गीयूथशतै र्भ्रमद्भि रभितो गुञ्जद्भि रामञ्जुले ॥

कह्लार, उत्पल, पद्म, कैरव आदि असंख्य प्रफुल्लित पुष्पों की सुगन्धि से—एवं हंस, दम्पति सारस चक्रवाक तथा कारण्डव आदि पक्षियों की अति आनन्द मदयुक्त अनेक क्रीड़ा जनित कलकल ध्वनि से महारमणीय, तथा इधर उधर उड़ते हुए भंवरों के शतशत यूथोंकी गुञ्जारसे भली प्रकार मञ्जुल—

[१०४]

आश्चर्यै र्हरिराधिकाविहरणैः कन्दर्पदर्पोद्धुरैः
शुद्धश्यामरसप्रवाहलहरीविस्फुर्ज्जदावर्त्तया ।
पीयूषादिकमाधुरीभरधुरीणां स्वाद्यशीताम्भसा
कालिन्द्या वररत्नबद्धतटया क्रोडीकृते दिव्यया ॥

श्रीराधाकृष्ण के आश्चर्यजनक कामदर्पमय अनेक बिहारों से युक्त, विशुद्ध शृङ्गाररस के प्रवाह, तरङ्ग एवं आवर्त्त समूह युक्त, अमृत से भी अधिक माधुर्यमय अति उत्कृष्ट आस्वादन करने योग्य शीतल जल से पूर्ण एवं श्रेष्ठ २ रत्नों से जड़ित तटों वाली दिव्य श्रीकालिन्दी के द्वारा अङ्कमें लियेहुए—

[१०५]

आश्चर्यै र्मणिपर्वतै रति महाशोभाढ्यसत्कन्दरै
र्दिव्यज्योत्स्नामृतनिर्झरैः कनकरत्नाम्भः सरिच्छोभितैः ।
प्रत्यग्राद्भुतवल्लिमण्डपवरै राश्चर्यरत्नद्रुमै
र्नानारत्नमयस्फुरत्खगमृगै रन्याद्भुतैः शोभिते ॥

आश्चर्य मणिमय पर्वतों, अति महाशोभापूर्ण कन्दरों, दिव्य ज्योत्स्ना के अमृतमय झरनों एवं स्वर्णरत्नमय जल की नदियों से शोभित, नवीन अद्भुत लतागृहों, आश्चर्यजनक रत्नमय वृक्षों, नाना रत्नमय पशुपक्षियों एवं इस प्रकार की अन्यान्य अद्भुत वस्तुओं से शोभित—॥१०५॥

[१०६]

उन्मीलत्तदुपत्यकोदित रहो वल्लीगृहै र्भूषिते
भ्राजन्मोहनपुष्पवाटिकऊरुश्रीमत्स्थलीचित्रते ।
प्रोन्मीलद्रसपुञ्जरञ्जितमहाकुञ्जावलिमञ्जुले
श्रीश्यामेन सहालि तद्दयितया क्लिप्ते च दिव्ये बने ॥

प्रकाश्यमान पर्वत की तरहटियों में निर्जन लतागृहों से भूषित, दीप्तिशील मनोहर पुष्पवाटिकाओं एवं अनेक शोभामय स्थानों से विचित्रित, उज्ज्वलरसों से रञ्जित महा कुञ्जावलि से मनोहारी, सखियों के सहित श्रीश्यामसुन्दर एवं उनकी प्रिया श्रीराधाजी से अङ्गीकृत उस दिव्यबनमें (श्रीवृन्दाबनमें)–

[१०७]

नानादिव्यविचित्रवर्णतनुभि र्दिव्याङ्गरागस्रगा-
कल्पै र्दिव्यकिशोरमोहनवयः शोभाचमत्कारिभिः ।
दिव्यानेककलातिकौशलकृतानन्दै र्निजप्रेयसोः
प्रेमान्धैः परिमण्डितेऽतिललिते राधासखी मण्डलैः ॥

नाना दिव्य विचित्रवर्ण देह, दिव्य अङ्गराग, माल्य-वेशादि के द्वारा, दिव्य किशोर मोहनकारी वयस की शोभा चमत्कारता के द्वारा, दिव्य नाना प्रकार की विद्याओं के अति कुशलता जनित आनन्द के द्वारा निज प्रियतम दम्पति के प्रेम में विमुग्ध श्रीराधा की सखी मण्डली से शोभित, (उस श्री-वृन्दाबन में ...... और फिर) अति ललित—॥१०७॥

[१०८]

चारुश्रोणिभरै र्वलित्रयवलत्क्षामोदरै र्मोहना
कारश्रीस्तनयुग्मकञ्चुकलसन्मुक्तावलीमण्डितैः ।
ताटङ्कद्युतिदीप्तगण्डमुकुरैः श्रीनासिकाग्रस्फुर-
द्रत्नस्वर्णनिबद्धमौक्तिकवरैः कान्त्याजगन्मोहनैः ॥

उन सखियों का कटिदेश अति सुचारु है, त्रिवलीयुक्त क्षीण उदर है. मोहनाकार सुन्दर स्तनों पर कांञ्चुलि के ऊपर मुक्तावलि की शोभा है, कुण्डलों की चमक से उनके कपोल प्रकाशित हो रहे हैं, सुन्दर नासिका के अग्रभाग में स्वर्णरत्न जटित सुन्दर मुक्ता डोलायमान है, उनकी छटा जगत् को मोहन करने वाली है—॥१०८॥

[१०९]

प्रेष्ठद्वन्द्वमहाप्रसादवसनाऽऽकल्पस्रगाद्युज्ज्वलै
स्तप्तस्वर्णसुगौरमोहनतनुज्ज्योतिर्जगत्पूरकैः ।

राधाकृष्णपदारविन्दपरमप्रेमैकजीवातुभि
स्तत्त दिव्यनिजाधिकारकलया प्राणद्वयप्रीणनैः ॥

वे प्रियतम युगलकिशोर के महाप्रसाद, वस्त्र, वेश माल्यादि धारण कर उज्ज्वल हो रही हैं, तप्त स्वर्णवत् सुगौर मोहन शरीर की कान्ति से जगत् को पूर्ण कर रही हैं, श्रीराधाकृष्ण-पादारविन्द में परम प्रेम हो उनकी एकमात्र जीवनमूरी है एवं वे अपनी अपनी अधिकृत कलाविद्या के द्वारा प्राणप्रियतम-युगल की प्रीति विधान करती हैं—॥१०६॥

इति श्रीवृन्दाबन-महिमामृते श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीविरचिते

—— तृतीयं शतकम् ——

इस प्रकार
श्री प्रबोधानन्द सरस्वती विरचित
श्रीवृन्दाबन-महिमामृत का
तृतीय शतक
स मा प्त
हुआ

॥ श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः ॥

❀ श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ❀

श्री वृन्दाबन-महिमामृतम्

चतुर्थं शतकम्
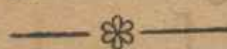
[१]

कूजन्नूपुरकाञ्चिदामललितैः पादाङ्गुलीयैः स्फुरत्
श्रीपादाङ्गदशोभितै वंरमणीकेयूरचूडागणैः ।
श्रीमत्पीननितम्बदोलितशिखासद्गुच्छवेणीलता-
मूलावेष्टितफुल्लमल्लिविपुलस्रगविभ्रमत्षट्पदैः ॥

बजते हुए नूपरों एवं मेखलारज्जु के द्वारा उनकी (श्रीराधा सखियों की) पादांगुली अति मनोहर होरही हैं; वे श्रेष्ठ मणिमय केयूर व चूड़ाओं के साथ अति सुन्दर नूपुरों की शोभा से विभूषित होरही हैं; सुन्दर स्थूल नितम्ब देश पर केशगुच्छबद्ध वेणीलतारूप से डोलायमान हैं उसके नीचे प्रफुल्लित मल्लिका की विशाल माला है, उस पर मधुकर विचर रहे हैं—॥१॥

[२]

विभ्राजद्वरकम्बुकण्ठपदकैः श्रीहस्तरक्ताम्बुज-
स्फुर्जद्रत्नमयाङ्गुलीयरुचिभिः कैशोरनित्योदयैः ।

वैदग्धीपरपारगै   रतिमहासङ्गीतविद्यामयैः
श्रीराधानुचरीगणैः श्रुतिशिरो दूरातिदूरेहितैः ॥

श्रीराधा-दासीगण सुन्दर शङ्खवत् त्रिरेखायुक्त कण्ठ में हार धारण कर रही हैं, उनके श्रीहस्त लाल कमलवत् हैं, उनमें रत्नमय अङ्गुरियों की कान्ति विच्छुरित हो रही है; वे नित्य किशोर अवस्थायुक्त हैं, निपुणता की परमकाष्ठा को प्राप्त हैं एवं रतिविलासादि की महा सङ्गीतविद्या जाननेवाली हैं; (अथवा—महासङ्गीतविद्या में अति निपुणा हैं) श्रुति शिरोमणि-गण उनकी चेष्टा को अणुमात्र भी नहीं जान सकते—॥२॥

[३]

सर्वाभीरकिशोरसुन्दरवधूदुष्प्रापपादाम्बुज-
च्छायैः सर्वविदग्धतानिधिलसद्दासीगणैः सेव्यया ।
तद्द्वन्द्वप्रणयोत्थसान्द्रपुलकश्रीमत्सखीमण्डलैः
कामावेश सदा मुदाकुलतया रात्रिन्दिवं लाल्या ॥

समस्त गोपकिशोरों की सुन्दर बधुएं जिन के चरण-कमलों की छाया भी नहीं देख पातीं, ऐसी सर्वनिपुणता की निधि दासियों से (श्रीराधा) सेवित हो रही हैं। उन युगल-किशोर की प्रणयजात गाढ़ पुलकावलिरूप शोभाशालिनी सखियों के द्वारा वह (श्रीराधा) कामावेश से महानन्द में आकुल होने के कारण दिनरात सेवित होरही हैं- ॥३॥

[४]

स्वालीस्वप्रियकिङ्करीगणलसत्तारावलीमध्यतः
स्फुर्जत्सौभगसान्द्रचन्द्रकलयेवात्यद्भुतज्ज्योतिषा ।
एकैकाङ्गतरङ्गिताद्भुतमहागौरच्छटैकाम्बुधे-
र्वीचिभिः स्वरसोत्सवात्मभि रहो संप्लाविताऽशेषया ॥

(श्रीराधा) अपनी सखी एवं प्रियदासीगण स्वरूप तारा-गणों में मानों अति अद्भुत ज्योतिपूर्ण सौभाग्यघन पूर्णकला चन्द्ररूप से प्रकाशित होरही हैं। अहो! प्रति अङ्ग से उच्छलित अद्भुत महा गौरकान्ति के ही एकमात्र समुद्र की निज रसोत्सवात्मक तरङ्गों से निखिल जगत् को सम्यकरूप से प्लावित कर रही हैं—॥४॥

[५]

कैशोराङ्कुरकोमलाङ्गवलनामाधुर्यविस्मापक
स्निग्धस्वर्णसुगौरसुन्दररुचिः प्रेमोर्मिपूर्णाशया।
सम्पूर्णातिविशुद्धमादकमहास्वाद्यैकरत्यात्मना
कुर्वन्त्या पशुपक्षिभूरुहलतादीनां मुहुर्मोहनम् ॥

वह किशोरावस्था के आरम्भकाल में ही कोमल अङ्गों की गठनादि के माधुर्य से विस्मयजनक स्निग्ध-स्वर्ण सुगौर-सुन्दर कान्तिमय प्रेम-तरङ्गों के द्वारा सब दिशाओं को पूर्ण कर रही हैं; सम्पूर्ण अति-विशुद्ध मत्तताकारी महा आस्वादन योग्य शृङ्गार स्वरूप के द्वारा पशु पक्षी, वृक्ष-लतादिकों को भी बार बार मोहित करती हैं—॥५॥

[६]

श्रीगौर्यादिसमस्तदिव्यवनितारूपैकविप्रुड्महा-
रूपैकाम्बुधिकोटिकोटिसुचमत्काराकराङ्गश्रिया।
दिव्यानेकविचित्रमन्मथकलाचातुर्यसीमान्तया
श्यामप्रेमरसान्मुहुर्मुहु रतिप्रोदश्चि रोमाञ्चया ॥

लक्ष्मी, गौरी आदि समस्त दिव्य नारीगणों का रूप जिन के महारूप सागर के एक विन्दु के समान है, वह उसी रूप सागर के कोटि कोटि गुणाधिक सुचमत्कारजनक

अङ्गसौन्दर्य को धारण कर रही हैं। वह अनेक दिव्य दिव्य विचित्र कामकलाचातुरी की सीमा हैं; एवं श्यामसुन्दर के प्रेम रस में बार बार रोमाञ्चित होरही हैं—॥६॥

[७]

काञ्चीनूपुरहारकङ्कणमणीताटङ्कचूड़ावली
केयूरावलिमुद्रिकाप्रविलसन्नासाग्र सन्मुक्तया ।
श्रीमत्पीननितम्बदोलितमहावेण्याग्रसद्गुच्छया
सीमन्तोज्ज्वलरत्नया सुकुसुमश्रीवेणीमूलस्रजा ॥

(श्रीराधा) काञ्ची. नूपुर. हार, कङ्कण, मणिमय कुण्डल, चूड़ासमूह केयूर, अंगूठी आदि भूषणों से भूषित होरही हैं, उनकी नासिका के आगे मुक्ता डोलायमान है एवं स्थूल नितम्ब देश पर गुच्छेदार विशाल वेणी लटक रही है, सीमन्तदेश में उज्ज्वल रत्न शोभा दे रहा है; वेणी के मूल देश पर सुगन्धित पुष्पों की माला है—॥७॥

[८]

सिन्दूरोज्ज्वलविन्दुसुन्दरदलस्वर्णेन्दुभालश्रिया
भ्रूभङ्गीभि रनङ्गकोटिमतिमर्यादां सृजन्त्यामुहुः ।
खेलल्लोचनखञ्जरीटकलया स्तब्धीकृतप्रेयसो
लीलालोलकटाक्षकामविशिखै मूर्च्छां ददत्या मुहुः ॥

भाल में उज्ज्वल सुन्दर सिन्दूर-विन्दु स्वर्णचन्द्र की शोभा प्रकाश कर रही है, वह बार बार भ्रूभङ्गी समूह से अनन्त कोटि कामदेवों की सृष्टि करती हैं, उन्होंने नृत्यपरायण लोचन खञ्जनों की कलाविद्या पर अधिकार पा लिया है एवं लीला से चञ्चल कटाक्ष-कामबाणों के द्वारा स्तब्ध प्रियतम को बार बार मोह प्रदान करती हैं—॥८॥

[९]

सव्रीड़स्मितचन्द्रिकाङ्कुरचमत्कारै र्मन श्चोरय-
न्त्यालापैश्च सुशीतलामृतरसस्यन्दाधिकस्वादुभिः ।
द्योतद्दाड़िमपुष्परोचिरधरामर्यादमाधुर्यया
लावण्यामृतपूर्णचारुचिबुकश्यामैकबिन्दुश्रिया ॥

जो लज्जायुक्त मृदु मधुर मुसकानरूप ज्योत्स्ना प्रकाश की चमत्कारता के द्वारा एवं सुशीतल अमृतरस-बिन्दुओं से भी अधिक स्वादिष्ट आलापादि के द्वारा मनको हरण करती हैं, प्रकाश्यमान दाड़िम के फूल की भांति कान्तिमय अधरों के असीम माधुर्य से मण्डित होरही हैं; एवं लावण्यामृतपूर्ण सुन्दर चिबुक पर एक श्याम-बिन्दु धारण कर परम शोभायमान हो रही हैं—॥९॥

[१०]

स्निग्धस्निग्धसुकोमलायतमहालावण्यवन्यामय
स्फूर्ज्जत्स्वर्णविनिर्मितैकमुकुरोन्मीलत्कपोलत्विषा ।
विभ्रत्याऽति सुपक्वदाड़िमलसद् बीजावलीसुन्दर-
श्रीमन्मौक्तिकदन्तपंक्तिमतुलां ताम्बूलकल्काङ्किताम् ॥

अति स्निग्ध सुकोमल विशाल महालावण्य-वण्यामय गण्डस्थलों की शोभा स्वर्ण से जड़ित दर्पण में प्रतिबिम्बित होकर प्रकाशित हो रही है। जिनकी मुक्तावत् अनुपम सुन्दर दन्तपंक्ति ताम्बूल की लालीयुक्त होकर अति सुपक्व दाड़िम (अनार) के दानों की भांति अति सुन्दर शोभा दे रही है—

[११]

श्रीनासातिलपुष्पशोभितमणिस्वर्णाक्तसन्मौक्तया
कन्दर्पाद्भुत-हेमतूणयुगलश्रीनासिकाशोभया ।

ताम्बूलैकरसाक्तरेखरसदप्राणेशदन्तक्षता–
लक्ष्य-श्यामिकमोहनाधरजवापुष्पातिशोणत्विषा ॥

जिनकी तिल के पुष्पवत् सुन्दर नासिका में मणि तथा स्वर्ण खचित सुन्दर मुक्ता शोभित है एवं कामदेव के अद्भुत दो स्वर्णभाथों (तरकसों) की भांति नासिका की सुन्दर शोभा है, मोहन–अधर एकमात्र ताम्बूल के रस की रेखाओं से रञ्जित हैं एवं इसलिये रसमय प्राणेश्वर के दन्तक्षत से हुआ श्याम-चिह्न भी नहीं दीखता; इन मोहन अधरों से वह जुवा-पुष्प से भी अधिकतर लालवर्ण धारणकर शोभित हैं—॥११॥

[१२]

नानारत्नविराजमानपदकै ग्रैवेयकेनाद्भुते–
नात्यन्तोज्ज्वलकम्बुकण्ठतटया सत्कण्ठिकाग्रैरपि।
सौन्दर्याकरकुट्मलाकृतिरसश्रीकूटवक्षोजयोः
सम्वीतोज्ज्वलकञ्चुकोपरिलसद्धारावलीरोचिषा ॥

नाना रत्नों से जटित पदक, अद्भुत कण्ठहार एवं एकलड़ी कण्ठिका धारण करने से उनका शङ्खवत् त्रिरेखायुक्त कण्ठ अतीव उज्ज्वल होरहा है। समस्त सौन्दर्य की खान, मुकुलाकृति (बिना खिले पुष्पवत्) रस से भरपूर एवं उच्च शोभायमय स्तनों के साथ मिलित कञ्चुकी के ऊपर चमकते हुए हारों की शोभा से जो अति मनोरम होरही हैं—॥१२॥

[१३]

लावण्योर्मिवलीविभङ्गललितक्षामोदरश्रीभृता
शोभाराशिनितम्बबिम्बविलसद्दिव्यारुणक्षौमया।
सुस्निग्धोज्ज्वलदिव्यहेमकदलीकाण्डोरुयुग्मोज्ज्वलन्
माधुर्यैकरसोच्छटोर्मिरचित प्रेयश्चमत्कारया ॥

जो लावण्यमय तरङ्गयुक्त वली-विभङ्गी सहित सुललित क्षीण उदर के महासौन्दर्य को धारण कर रही हैं, (जिनके) शोभाराशिपूर्ण नितम्बों पर दिव्य लाल वसन शोभा दे रहा है; सुस्निग्ध उज्ज्वल दिव्य स्वर्ण कदलीखम्भ के सदृश जंघाओं की दीप्तिमय एकमात्र माधुर्य रसमय कान्ति-तरङ्गों के द्वारा प्रियतम को चमत्कार जन्माती हैं—॥१३॥

[१४]

ज्योति:पुञ्जसुजानुबिम्बविलसज्जङ्घामृणालश्रिया
निर्मर्यादपदाम्बुजोदितमहामाधुर्यसौन्दर्यया ।
अङ्गेऽङ्गेऽद्भुतरूपसौभगमहामाधुर्यसुस्निग्धता-
श्यामप्रेमविकारकान्तिसुचमत्कारातिधारापुषा ॥

ज्योतिराशिमय सुन्दर जानुओं के एवं अति सुन्दर जङ्घारूप मृणालों के सौन्दर्य को धारण कर रही हैं, प्रफुल्लित पादपद्मयुगल असीम महामाधुर्य सौन्दर्य से शोभित होरहे हैं, उनका प्रतिअङ्ग अद्भुत रूप, सौभाग्य, महामाधुर्य, सुस्निग्धता एवं श्रीश्यामसुन्दर के प्रेमजनक अनेक विकारों के कारण अतीव कान्ति-चमत्कारता की वर्षा कर रहा है—॥१४॥

[१५]

सर्वाङ्गीन मुहुर्मुहुः पुलकया नित्योन्मदश्यामलो-
त्तुङ्गाभङ्गरतिप्रसङ्गमुदितानङ्गालसाङ्गश्रिया ।
किञ्चित् किञ्चिदुदञ्चदाकुलगिरामाधुर्यधाराकिरा
कुर्वन्त्याऽनवकाशिवेशकरणेऽप्यालीकुलं व्याकुलम् ॥

उनके सर्वाङ्गों में बारबार पुलकावलि होती है, नित्य उन्मादकारी श्यामसुन्दर के अति उन्नत अभङ्ग (कुटिल, नित्य स्थायी) रतिप्रसङ्ग में ही आनन्दित होकर वह प्रति अङ्ग में

कामालस्य सौन्दर्य धारण कर रही हैं; माधुर्यधारा वर्षणकारी अनिर्वचनीय किसी किसी महाव्याकुलतापूर्ण वाक्य के द्वारा वेशरचना कार्य में भी सखियों को असमय पर व्याकुल कर देती हैं—॥१५॥

[१६]

ताम्बूलव्यजनादिभि र्मृदुमृदुप्रेम्नाङ्घ्रिसम्वाहनैः
श्यामाङ्गे निहितालसाङ्गलतया दासीभि रासेव्यया।
प्राणेशाननचन्द्रगं मधु तथा ताम्बूल संचर्वितं
गृह्णत्या स्वमुखेन्दुगं च विहसन्त्याऽस्मैददत्या मुहुः ॥

श्रीश्यामसुन्दर के अङ्ग (अंक) में वह आलसयुक्त अङ्ग अर्पण कर ताम्बूल प्रदान, व्यजनादि सेवा तथा प्रेमसहित धीरे धीरे पाद सम्वाहनादि के द्वारा दासीगणों से सम्यक प्रकार सेवित होरही हैं, प्राणेश्वर (श्रीश्यामसुन्दर) के मुख-चन्द्र का मधु तथा चर्वित ताम्बूल बारबार स्वयं ग्रहण करती हैं एवं मृदु मधुर हास्यपूर्वक अपने मुखचन्द्र का मधु तथा संचर्वित ताम्बूल उनको पुनः पुनः देती हैं—॥१६॥

[१७]

कोऽपि श्यामकिशोरचन्द्रउरुभिः कन्दर्पलीलाकला
चातुर्यै रतिसौभगोऽपि च चमत्कारानपारान् दधत्।
श्रीराधैकमहानुरागविभवै र्लावण्य-माधुर्ययोः
पूरैः सन्तत दुर्मदस्मरवशः श्रीराधया खेलती ॥

कोई एक (अनिर्वचनीय) श्यामकिशोरचन्द्र अनेक प्रकार की कन्दर्प-लीला की कला चातुरी से अतिशय सौभाग्यवान होते हुए भी अपार चमत्कारता धारण कर श्रीराधा की महानुराग विभूति के द्वारा लावण्य एवं माधुर्य प्रवाहसहित

निरन्तर दुर्दमनीय काम के वशीभूत होकर—उसी श्रीराधा के साथ क्रीड़ा करता है ॥१७॥ (२० श्लोकों में कुलक समाप्त हुआ)

[१८]

तावेवाद्भुतदम्पतीनवनवानङ्गै करङ्गाकुलौ
गौरश्यामलदिव्यमोहनतनूकैशोर एव स्थितौ ।
श्रीवृन्दाबनमण्डलेऽतिनिभृतश्रीकुञ्जपुञ्जे मुहुः
प्रेमौत्कण्ठ्याभरात् स्मरामि पुलकोद्भेदैः कदम्बायितौ ॥

नव नव अनङ्गरङ्ग में आतुर गौरश्याम दिव्यमोहन तनुधारी नित्य किशोरावस्थायुक्त वे अद्भुत श्रीयुगलविग्रह श्रीवृन्दाबन मण्डल के अति निभृत कुञ्जों में बार बार प्रेमोत्कण्ठा से पुलकावलिवश कदम्बाकृति धारण करते हैं—उनका मैं स्मरण करता हूँ ॥१८॥

[१९]

तत् कैशोरक मद्भुतं पुरुचमत्कारा च सा श्यामिका
तत्सौन्दर्य मशेषमोहन महो कन्दर्पलीलाश्च ताः ।
भावा स्ते च महाद्भुताश्रुपुलकस्तम्भादयः सात्त्विकाः
सा राधावशता च चेतसि चमत्कुर्वन्तु मे श्रीहरेः ॥

अहो ! वही अद्भुत किशोर-अवस्था एवं वही सुचमत्कारमयी श्यामा (श्रीराधा), वही अशेष मोहन-सौन्दर्य और वही लीलाएं एवं वही महा अद्भुत अश्रु, पुलक, स्तम्भादि भाव और श्रीहरि की वही श्रीराधा-वश्यता आदि मेरे चित्त में चमत्कार विधान करें—यही प्रार्थना है ॥१९॥

[२०]

सा वृन्दावनमाधुरीमधुरिमा स श्रीनिकुञ्जावले
गौरश्यामकिशोरयो रहह सा कामान्धयो र्माधुरी ।

माधुर्यञ्च महाद्भुतं खलु तयो रन्योन्य गोष्ठीक्षण-
व्याजस्पर्शसुनर्मकेलिलहरीवृन्दस्य भायान्मम ॥

अहो ! वही श्रीवृन्दावन-माधुर्य, वही निकुञ्जों की मधुरिमा—अहह !! वह कामान्ध गौरश्याम श्रीयुगलकिशोर की माधुरी एवं दोनों का परस्पर वार्तालाप-उत्सव, छलपूर्वक स्पर्श, परिहास एवं केलिसमूह का महाअद्भत माधुर्य ही मेरे चित्त में स्फुरित हो—यही प्रार्थना करता हूं ॥२०॥

[२१]

सर्वानन्दकदम्बसारपरमापाराम्बुधौ राधिका-
दासीनामनुनेतरि स्मरकलापारं परं गन्तरि ।
नित्यं प्राप्तरि कामविप्लवदशां श्यामे किशोरे महा-
श्चर्या काऽपि रति ममास्तु सततं वृन्दाबने वस्तरि ॥

समस्त आनन्द राशियों के सार का जो परम असीम समुद्र हैं, श्रीराधिका दासियों के आगे जो अनुनय करते हैं, कामकला विद्या के जो पारगामी हैं, जो नित्य काम-विप्लव दशा को प्राप्त हैं, श्रीवृन्दाबन में निरन्तर विहार करने वाले उन श्यामकिशोर में मेरी कोई अनिर्वचनीय आश्चर्यमय रति हो—यही प्रार्थना है ॥२१॥

[२२]

श्रीमद्वृन्दाबनमिव बनं भाति वृन्दावनाख्यं
राधाकृष्णौ मधुररसमात्राकृती यत्र भातः ।
राधाकृष्णाविव वरसखीमण्डलं तद्द्वयैक-
न्यस्तप्राणं तदुभयरसेनात्मवन्मोमुदीति ॥

श्रीवृन्दाबन-नामक बन श्रीवृन्दाबन ही की भांति शोभा दे रहा है, जहां श्रीराधाकृष्ण के सदृश ही एकमात्र मधुर-

रसाकृति श्रीराधाकृष्ण निरन्तर विराजमान हैं एवं उन युगल-किशोर में ही गतप्राण तथा उन ही का आत्म-स्वरूप श्रेष्ठ सखियां दोनों के रस में सराबोर होकर निरन्तर आनन्द प्राप्त कर रही हैं ॥२२॥

[२३]

वृन्दारण्यं निरधिकसम धाम सारं रसानां
राधाकृष्णौ निरधिकसमौ शेखरौ सद्गती नः ।
क्रीड़ारङ्गं तदुभय निजप्राणयोः पुष्णती सा
वैदग्धीभि र्निरधिकसमा मण्डली मोहिनीनाम् ॥

श्रीवृन्दावन अनूर्ध्वसमान (जिसके समान एवं जिस से अधिक कोई नहीं) धाम है, समस्त रसों के सार अनूर्ध्व-समान श्रीराधाकृष्ण सर्व शिरोमणि ही हमारी एकमात्र गति हैं अपने प्राणेश्वर युगलकिशोर के क्रीड़ारङ्ग को वह अनूर्ध्व-समान मोहिनी सखी मण्डली वैदग्धी (चतुरता) के द्वारा निरन्तर परिपुष्ट कर रही है ॥२३॥

[२४]

अहो मौढ्य महो मौढ्य महो दुर्भाग्य मीदृशम् ।
महानपि महानन्दे यन्न वृन्दावने रतः ॥

अहो मूर्खता ! अहो अज्ञता !! अहो ऐसा दुर्भाग्य !!! जो (सांसारिक) महान व्यक्ति होते हुए भी महानन्द स्वरूप इस श्रीवृन्दावन में प्रेम नहीं हुआ ॥२४॥

[२५]

अहो तादृङ् महानन्दकन्दं वृन्दावनं न चेत् ।
महत्तमोऽपि श्रयते वाच्यो नीचतमो हि सः ॥

अहो ! महत्तम व्यक्ति होकर भी इस प्रकार महानन्द-कन्द श्रीवृन्दाबन का जो आश्रय नहीं करता, उसे नीचतम ही कहा जायगा ॥२५॥

[२६]

सान्द्रानन्दरसे वृन्दाबनेऽपि नानुरज्यतः ।
किं वा मम करिष्यन्ति ज्ञानभक्तिविरक्तयः ॥

आनन्दघनरस के मूल श्रीवृन्दाबन में भी यदि मेरा चित अनुरक्त नहीं होता, तो ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य आदि मेरा क्या करेंगे ? ॥२६॥

[२७]

धिग् धिङ् मामपि सद्विद्याकुलशीलगुणोज्ज्वलम् ।
वृन्दाबनरतिप्राणहीनो हि स्याद् यतः शवः ॥

विद्वान, कुलीन, सुशील, गुणी एवं रूपवान होते हुए भी मुझे धिक्कार है ! धिक्कार है !! क्योंकि श्रीवृन्दाबन के प्रेम-रूप प्राणों से रहित व्यक्ति तो शव (मृतक) ही है ॥२७॥

[२८]

शोच्यशोच्यातिशोच्योहं महामूढातिमूढधीः ।
हठात् सर्वं परित्यज्य यन्न वृन्दाबनं श्रये ॥

महाशोचनीय से भी अति महाशोचनीय मैं हूं ! महा मूर्ख से भी अति महामूर्ख बुद्धि मैं हूँ !! क्योंकि जो शीघ्र ही सब कुछ त्याग करके श्रीवृन्दाबन का आश्रय नहीं करता ।

[२९]

दूरे चैतन्य-चरणाः कलि राविरभून्महान् ।
कृष्णप्रेमा कथं प्राप्यो विना वृन्दाबने रतिम् ॥

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के चरण तो दूर हैं (उनकी प्राप्ति मेरे लिये कठिन है), महा कलियुग आगया है !!

इसलिये श्रीवृन्दावन की रति के बिना श्रीकृष्ण-प्रेम कैसे प्राप्त होगा ? ॥२६॥

[३०]

अहो ! विट्शूकरप्रायोत्थुल्लदशः पशु स्ततः ।
न मूढ़ः श्रयते वृन्दावनमानन्दसागरम् ॥

अहो ! विष्ठाभोजी शूकर, पशु की भांति उत्फुल्ल-दशा (प्रसन्नता) को प्राप्त वही हो सकता है, जो मूर्ख आनन्दसागर श्रीवृन्दावन का आश्रय नहीं करता ॥३०॥

[३१]

हा हा ! वृन्दावनं त्यक्त्वा यदन्यत् कर्त्तुमुत्सहे ।
जानन्नपि विषं भुञ्जे थुत्कृत्य परमामृतम् ॥

हाय ! श्रीवृन्दावन त्यागकर जो और कार्यों में मेरा उत्साह होता है तो जानबूझ कर परमामृत को थुत्कार कर विष का ही भोजन करना चाहता हूँ ॥३१॥

[३२]

यशोभिः पूरिता आशाः कृतं विश्वानुरञ्जनम् ।
हा हन्त दिङ्मात्रमपि नेचे वृन्दावनेशयोः ॥

अनेक यश-कीर्ति से दशों दिशाएं पूर्ण हो चुकीं, विश्व का अनुरञ्जन (प्रसन्न करना) भी कर लिया; किन्तु हाय ! श्रीवृन्दावनाधीश (श्रीयुगल किशोर) की ओर मात्र भी नहीं देख सका ॥३२॥

[३३]

किं करोम्यहमुन्मत्तो यत् किञ्चित् प्रलपाम्यलम् ।
ज्ञानभक्तिविरक्त्यादिर्व्यर्थं वृन्दावनं बिना ॥

क्या करूं ? मैं तो पागल हो गया हूँ । जो कुछ प्रलाप करता हूँ—उससे ही क्या होगा ? श्रीवृन्दावन के (आश्रय) बिना ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि सब व्यर्थ हैं ॥३३॥

[३४]

चौरोऽयं पतितोऽयमित्यतिवदन् सन्तर्जयन्ताड़यन्
वध्नन् सर्वजनोऽप्यनागसमिमं सर्वत्र चोद्वेजयेत् ।
अन्तः क्लेशमतीवदुःसहतरं प्राप्नोति नानाविधै
दुःखै रद्यैव एव चेत्तदपि मे देहोऽस्तु वृन्दाबने ॥

कोई यदि मुझे "यह चोर है", 'पतित है" इत्यादि वाक्यों से कठोर भर्त्सना करे, तर्जना-गर्जनापूर्वक अच्छी तरह ताड़ना करे, बांध दे, सब लोग निरपराधी मुझ को सर्वत्र उद्विग्न करें अथवा यदि मुझ को अतीव असह मनपीड़ा ही प्राप्त हो, किंवा अनेक प्रकार के दुखों के द्वारा उत्पीड़ित भी होऊं, फिर भी मेरा यह शरीर तो इसी श्रीवृन्दाबन में ही पात हो—यही मेरी प्रार्थना है ॥३४॥

[३५]

प्रेमानन्दमहारसाब्धिसुघनो वृन्दाटवी-चन्द्रमा-
मुख्यां रात्यमलां रतिं निरवधिं वृन्दाबनाधीश्वरी ।
श्रीवृन्दाविपिनञ्च तद्रसमयं तादात्म्यभावाद्भुत-
स्नेहावेशसदोद्यदश्रुपुलकं श्रीमत्सखीमण्डलम् ॥

श्रीवृन्दाबनाधीश्वरी प्रेमानन्दमय महारस-सागर के सुघनीभूत श्रीवृन्दाबनचन्द्र की मुख्य अमलारति निरन्तर दान करती हैं—श्रीवृन्दाबन भी तद्रसात्मक होरहा है, और सौन्दर्यमयी सखीमण्डली भी तादात्म्यभाव में अद्भुत स्नेहा-वेश के कारण सदा सर्वदा अश्रुपुलकादियुक्त होकर विराज रही है ॥३५॥

[३६]

कालिन्दीपुलिने सुरद्रुमतले श्रीमल्लतामण्डपे
संसेव्यललितोपहारनिकरै र्दिव्यैः किशोरीगणैः ।

गौरश्यामकिशोरधामयुगलं तत् कर्हि वृन्दाबने
तद्भावस्फुरदाकृतिः परिचराम्याश्चर्यलीलामयम् ॥

श्रीवृन्दाबन के कालिन्दी-पुलिनों में कल्पवृक्ष के नीचे सुन्दर लता मण्डप में दिव्य किशोरीगणों से सुन्दर उपहारों के द्वारा भली प्रकार सेवित उन आश्चर्य-लीलामय गौरश्याम युगल की कब मैं तद्भावित आकृति स्फूर्त्ति के साथ नित्य परिचर्या करूंगा ? ॥३६॥

[३७]

शिञ्जन्मञ्जीरपादा विपुलकटितटप्रस्फुरत्-काञ्चिदामा
मध्ये क्षामा किशोरी कुचमुकुलयुगप्रोल्लसत्तारहारा ।
लोलद् वेण्यग्रगुच्छा कनकमणिलसच्चारुनासाग्रमुक्ता
चित्रक्षौमं वसाना मम कनकरुचि र्भातु राधैकदासी ॥

जिनके चरणों में नूपुर बज रहे हैं, विशाल कटिदेश में मेखला शोभित हैं, मध्यदेश जिनका क्षीण है, जो किशोर अवस्थायुक्त हैं, जिनके मुकुलस्तनों पर उज्ज्वल तारों के हार डोलायमान हैं, वेणियों के गुच्छे इधर उधर लटक रहे हैं, सुन्दर नासिकाओं में स्वर्णमणि जटित मुक्ता हैं, विचित्र पतले वस्त्र धारण कर रही हैं—ऐसी स्वर्ण-वर्ण कान्तियुक्त श्रीराधा-दासियां मेरे हृदय में स्फुरत हूँ ॥३७॥

[३८]

यां यां रूपवतीं नवीनतरुणीं लावण्यलीलाकला-
माधुर्यैं मु निमोहनीम नुरतां भावोत्सवव्यञ्जनीम् ।
तां तां वीक्ष्य स थुत्करोति परमां दिव्यामपि स्फुर्त्तिमान्
श्रीराधापदकिङ्करीपदनखप्रान्तोऽपि यस्यात्मनि ॥

जिसके हृदय में श्रीराधा की चरण-किङ्करी का पद-नखप्रान्त भी स्फुरित होता है, वह—रूपवती नवोन तरुणी को जो सौन्दर्य एवं लीलामाधुर्य से मुनियों को भी मोहित कर सकती है, तथा जो अपने प्रति अनुरक्तचित्त है, भावोत्सव प्रकाश करने वाली है एवं परम दिव्या है—ऐसी उस नारी को भी थुत्कार देता है ॥३८॥

[३९]

वृन्दारण्याधीश्वरीपादपद्मज्योतिः सिन्धौ राद्यरत्यैकवृत्तेः ।
व्यक्तं लीलारूपकैशोरकाद्यै स्तद्दासीनां वृन्दमीक्षेऽतिदिव्यम् ॥

श्रीवृन्दाबनाधीश्वरी के चरण-कमलों के ज्योति समुद्र के शृङ्गार रसमूलक लीला-रूप-कैशोरादि द्वारा अभिव्यक्त अति दिव्य उन श्रीदासीवृन्द के दर्शनों की मैं इच्छा करता हूँ।

[४०]

द्रुतकनकसुगौरीमङ्गवल्लीं दधानां
नवतरुणीं लीलाकान्तिपूरै रपाराम् ।
विपुलजघनखेलद् बेणि माश्चर्यरोचि
र्नवकनक महीध्रप्रेक्ष्य वक्षोजलक्ष्मीम् ॥

जो तप्त स्वर्णवत् सुन्दर गौरवर्ण अङ्गलता धारण कर रही हैं, जो नवीन योवनमण्डित अपार लीला एवं कान्तियुक्त हैं, जिन की वेणी विशाल जंघाओंपर खेल रही हैं जो आश्चर्य मय कान्तियुक्त हैं एवं नव स्वर्णपर्वन अर्थात सुमेरु के द्वारा भी दर्शनकरनेयोग्य स्तनों की शोभा धारण कर रही हैं—(४० से ४५ श्लोक तक कुलक है) [४१]

नवरससारास्वादसुस्मेरवक्त्रां नवनवरसखेलत् खञ्जरीटायताक्षीम् ।
रुचिरवलयराजीदिव्यकेयूरराजत् सुवलितरुचिपूर्णस्निग्धो र्वल्लियुग्माम् ।

नव नव रस-सार आस्वादन करके जिनका मुख सुहास्ययुक्त है, नवीन नवीन रस में क्रीड़ा करने वाले जिनके विशाल नेत्र खञ्जनवत् शोभित होरहे हैं, जिनकी सुबलित शोभापूर्ण बाहु-लताओं में सुन्दर कङ्कणों सहित दिव्यबाजु-बन्द विराजमान हैं—॥४१॥

[४२]

श्रवणतटे विराजद्दिव्यताटङ्करत्नां
रुचिरकनकरत्नोद्भासिनासाग्रमुक्ताम् ।
विविधकनकहारप्रोल्लसत्कम्बुकण्ठी
मुरुमणिगणविभ्राजिष्णुकेयूरचूड़ाम् ॥

जिनके कानों में दिव्य रत्नमय कुण्डल शोभित हैं, जिनकी नासिका में सुन्दर स्वर्ण-रत्न-खचित मुक्ता लटक रहा है, जिनके कम्बुकण्ठ में अनेक प्रकार के स्वर्ण-हार चमक रहे हैं, जिनके केयूर एवं शिखा में अनेक मणि-माणिक्य शोभा दे रहे हैं—॥४२॥

[४३]

रुचिरमणिविराजन्मुद्रिकाढ्याङ्गुलीका
मुरुसिजरुचिपूरां चोलिकामावहन्तीम् ।
परमरुचिरमुष्टिग्राह्यमध्यां नितम्बो-
ज्ज्वलमणिमयकाञ्चीं मञ्जुमञ्जीरपादाम् ॥

जिनकी अङ्गुलियों में सुन्दर मणिजटित मुद्रिकाएं शोभित हैं, जो स्तनों की कान्ति से उद्भासित चोलिका पहर रही हैं, जिनका मध्यदेश (कटि) परम रमणीय एवं मुष्टिग्राह्य (अति पतला) है, जिनका नितम्बदेश उज्ज्वल मणिमय मेखला से एवं चरणकमल मनोहर नूपुरों से विभूषित हैं—॥४३॥

[४४]

मुहुरुरसिदधानां वीक्ष्यसव्रीड़हासं
प्रियमतिरसलोलं लीलयात्ताम्बरान्तम् ।
प्रतिपदनवरङ्गानन्दमन्दस्मितोर्मि–
स्तवकितमुखचन्द्रामुल्लसद्रोमहर्षाम् ॥

जो लीलाक्रम से वस्त्र खींचने वाले अतीव रस-चञ्चल प्रियतम को देखकर लज्जायुक्त मुसकाती हुईं उसे (वस्त्र को) बार बार वक्षस्थल पर धारण करती (जोड़ती) हैं. प्रतिपद में नवीन रङ्ग की आनन्दमय मन्दमुसकानरूप तरङ्ग में जिन का मुखचन्द्र प्रफुल्लित होता है एवं जो उल्लास में आकर पुलकित हो रही हैं—॥४४॥

[४५]

किमपि किमपि सख्या भाषमाणां सहासं
किमपि किमपि दृष्टे श्चापलं प्रोद्वहन्तीम् ।
किमपि किमपि लोलद्गात्रवल्लीं कदान्तः
किमपि किमपि राधां सम्यगाराधयामि ॥

हास्य सहित सखीगण जिनको कुछ कुछ (अनिर्वचनीय) कहती हैं एवं जो नेत्रों से कोई कोई चाञ्चल्य प्रकाश करती हैं, जिनकी देह लता (रस में, भाव में) कुछ कुछ झूमती हैं—ऐसी श्रीराधाजी की कब मैं सम्यक् प्रकार से मन में कुछ कुछ भी आराधना कर सकूंगा ? ॥४५॥ (इति कुलक)

[४६]

वाग्वाणाः प्रपतन्तु मर्मसु शतं पादप्रहाराः शिरो-
देशे सन्तु शतं शतं भ्र वमनाहाराः शतं सन्तु वा ।
स्मारं स्मारमथापि जीवनधनं तद्गौरनीलं महो–
द्वन्द्वं सान्द्ररसाब्धिमूर्त्तिमुदितो वत्स्यामि वृन्दावने ॥

हृदय पर शत शत वाक्य-वाणों के प्रहार हों, चाहे सिर पर शत शत पद-प्रहार ही हों, शत शत उपवास निश्चय ही होते रहें, तो भी उन जीवन-धन गौरनील रसघन-समुद्र-मूर्त्ति श्रीयुगलकिशोरको स्मरण करतेहुए श्रीवृन्दावनमें आनन्द-पूर्वक वास करूंगा ॥ [४७]

मुक्तं जन्मनि जन्मनि प्रियवधू स्रकचन्दनाद्यं त्वया–
ऽहङ्कार स्तु न शान्त एव सुयशो वहर्ज्जितं नाऽस्य तत् ।
अभ्यस्ता च समस्त शास्त्र वितति र्मोहस्तु नास्तं गत
स्तन्निर्विद्य समस्ततो भज महानन्दाय वृन्दावनम् ॥

तुमने जन्म जन्म में प्रियवधू के मालाचन्दनादि का भोग किया है—किन्तु अहंकार तो शान्त नहीं हुआ; बहुत सुयश प्राप्त कर लिया—किन्तु मोह तो नाश हुआ नहीं; अतएव समस्त विषयों से वैराग करके महानन्द की प्राप्ति के लिये श्रीवृन्दाबन का भजन कर ॥४७॥

[४८]

सुक्षीणा धमनी ततोऽमृजवपुः केशो जरत् कन्थया
कौपीनेन च चीरखण्डक कृतेनाढ्योऽतिसौम्याकृतिः ।
तूष्णीकः सकलाधमाधम इवात्यन्तं विदूरे चरन्
श्रीराधापद-दास्यलीन हृदयो वृन्दावने स्यां कृती ॥

क्षीण नाड़ीयुक्त (अति दुर्बल) एवं अमार्ज्जित शरीर-युक्त जटा एवं कन्था-फटे वस्त्रों की कौपीन धारण करते हुए, अति शान्तस्वभावयुक्त एवं चुपचाप रहकर तथा समस्त अधमों से भी महा अधमवत् बहुत दूर रहते हुए श्रीराधाजी के चरणों की सेवा में विलीन-हृदय होकर श्रीवृन्दाबन में कृतार्थ होऊं—यही मेरी प्रार्थना है ॥४८॥

[४६]

कौबेरीधनसम्पदस्ति किमतो वाचस्पते र्वाग्मिता
लब्धा किं नु ततो महेन्द्रभवनैश्वर्यं स्थितं किं ततः ।
किं कन्दर्पवपुः श्रियाद्भुत तपोयोगादिसिद्धया च किं
श्रीवृन्दाबननामधामविमुखे सर्वो विडम्बो यतः ॥

यदि कुबेर का धन प्राप्त हो जाय, तो उसका क्या फल? यदि वृहस्पति जैसी सुवाणी प्राप्त हो, तो उससे क्या? महेन्द्र के लोक का ऐश्वर्य मिले, तो उससे क्या लाभ? कामदेव जैसा सुन्दर शरीर मिले तो क्या? तपस्या, योगादि की सिद्धि से क्या प्रयोजन? क्योंकि श्रीवृन्दाबन-नामक धाम से जो व्यक्ति विमुख है, उसीके लिये ये सब विडम्बना मात्र हैं ॥४६॥

[५०]

सदा खेलन्नित्य स्मरतरल राधा-मधुपति-
स्फुरद्विद्याऽविद्यामय सकल धामोपरि सदा ॥
स्वमाधुर्यौज्ज्वल्यादिभि रितर सर्वाभिभवकृद्
भुवि प्राप्तं वृन्दाबनमिदमहो को न भजते ॥

जहां सदा काम-चञ्चल राधामधुपति नित्य क्रीड़ा करते हैं, जो धाम विद्यामय एवं अविद्यामय समस्त धामों के ऊपर प्रकाशित है, अपने माधुर्य व उज्ज्वलता आदि के द्वारा जिसने और सब धामों को पराजित कर दिया है—अहो ऐसे भौम-श्रीवृन्दाबन को कौन नहीं भजता? ॥५०॥

[५१]

यत् स्वात्मप्रभशुद्धचिन्द्रसघनं यत्राखिलं तादृशं
कृष्णप्रेमरसाब्धिमग्नमखिलं पश्यन्त-दृग् दूरगम् ।

तस्मिन् भूप्रकटेऽविचिन्त्यमहिमानन्त्येऽत्र वृन्दाबने
पश्येयु र्यदि दूषणानि कुधियः किं स्यात्ततोऽन्तर्दृशाम् ॥

जो स्वयंप्रकाश एवं शुद्धचिद्-रसात्मक है, जिस में स्थित समस्त (स्थावर जङ्गमादि भी) उसी की भाँति (स्वयं-प्रकाश व शुद्ध चिद्रसघन) है एवं कृष्ण-प्रेम-रस समुद्र में मग्न है; जो वेदान्तियों की दृष्टि के अगोचर है, ऐसी अविचिन्त्य-महिमायुक्त इस भौम-श्रीवृन्दाबन में यदि मूर्खलोग दोषों को देखें तो उससे अन्तरदृष्टियुक्त (हृदय के नेत्र जिन के खुल चुके हैं) पुरुषों की क्या हानि ? ॥५१॥

[५२]

सुरसेनानन्तं मधुरिमभरेणान्तरहितं
रुचानन्तं कृष्णप्रणयरसतोऽप्यन्तरहितम् ।
कृपौदार्यानन्तं निजपरमहिम्नान्तरहितं
तदानन्तं भाग्यं भजति यदि वृन्दाबनमिदम् ॥

(यह श्रीवृन्दाबन) सौन्दर्य में अनन्त है, माधुर्यपूर्णता में अनन्त है, ज्योतिविस्तार करने में अनन्त एवं कृष्ण-प्रीतिरस में भी अनन्त है; कृपा और उदारता में अनन्त है, अपनी महिमा में भी अनन्त है—इस श्रीवृन्दाबन को यदि कोई भजता है, तो उसके भाग्य अनन्त हैं ॥५२॥

[५३]

वीक्षे दिव्याक्षिलक्षैः स्थिरचरसुषमां सौरभं घ्राणलक्षै
र्जिघ्राम्याकर्णये च श्रवणविततिभि स्त्वद्गुणानत्युदारान् ।
पत्कोट्या त्वयटेयं यदि च करशिरः कोटिभिस्त्वां नमेयं
नो तृप्ति र्मे तथापि प्रियतमपरमानन्दवृन्दाबनाद्य ॥

हे प्रियतम परमानन्दमय श्रीवृन्दाबन ! यदि आज मैं लाख दिव्य नेत्रों से तुम्हारे स्थावर-जङ्गमों की शोभा दर्शन करूं, लाख नासिकाओं के द्वारा तुम्हारी सुगन्धि सेवन करूं, अनेक कानों से यदि तुम्हारी अति उदार गुणावलि श्रवण करूं, करोड़ों चरणों से यदि तुम्हारे बीच भ्रमण कर सकूं तथा कोटि कोटि हाथों एवं मस्तकों से तुम्हें नमस्कार करूं— तो भी मेरी तृप्ति नहीं होगी ॥५३॥

[५४]

कर्णे शङ्कुः प्रवेश्यः किमपि यदि शृणोत्येतदीयस्य दोषान्
जिह्वाच्छेद्या प्रमादाद् यदि वदति समुत्पाट्यमक्षीक्षते चेत् ।
प्राणाः संत्यागयोग्या यदि मनसि तथा निश्चयस्तत्र्वाद्या-
श्चाण्डालीकृत्य वर्ज्याः परमतममिदं धामवृन्दावनं यत् ॥

यदि कान इस (श्रीवृन्दाबन) के दोषों को सुनें, तो उनमें कील गड़वा देना उचित है; यदि जिह्वा भूल कर उन (दोषों) का उच्चारण करे, तो वह काट देने योग्य है; यदि नेत्र उन (दोषों) को देखें, तो उनको निकलवा देना चाहिये; यदि मन में इन (दोषों) का विश्वास जम जाये, तो प्राण त्याग करना ही कर्तव्य है; वे समस्त कानादि(इन्द्रियगण) चण्डाली-वत् अस्पृश्य एवं त्यागने योग्य हैं—क्योंकि यह श्रीवृन्दाबन-धाम तो परमतम-महत्तम वस्तु है ॥५४॥

[५५]

नहि वृन्दावन विन्दाम्यहमिन्दावप्यमीदृशीं सुखताम् ।
तुच्छीकृत सुरगणिका-सुखजनिका ते यतो रजःकणिका ॥

हे श्रीवृन्दाबन ! मैं चन्द्र में भी ऐसा सुख प्राप्त नहीं करता हूँ—क्योंकि तुम्हारा एक रजकण भी स्वर्ग की वेश्या-

गणों के (सङ्ग) सुख को भी अति तुच्छ बना देता है ॥५५॥

[५६]

वृन्दारकनुत वृन्दाविपिनलताशाखिगुल्मानाम् ।
वृन्दारक इह नन्दन मन्दा मन्दारकोटिभिः किं वः ॥

हे कुबुद्धि मनुष्यो ! देवताओं के द्वारा भी वन्दनीय इन श्रीवृन्दावन के लता, वृक्ष, गुल्मादि का भली प्रकार आनन्द प्राप्त करो—कोटि कोटि मन्दार (स्वर्गीय पांच प्रकार के वृक्षों में से एक वृक्ष का नाम है) वृक्षों से तुम्हें क्या लाभ होगा ? ॥५६॥

[५७]

श्रीराधामुरलीधर वरधन वृन्दावने वरं कृमिकः ।
भगवत्-पार्षदमुख्योऽप्यन्यत्राऽहं न चोत्सहे भवितुम् ॥

श्रीराधामुरलीधर के परमधन इस श्रीवृन्दावन में क्षुद्र कृमि होना अच्छा है परन्तु अन्य स्थान पर भगवत् पार्षद श्रेष्ठ होने का भी मैं उत्साह नहीं करता ॥५७॥

[५८]

वृन्दावनगुणवृन्दान्यनिशममन्दानुरागेण ।
यो वर्णयति समाकर्णयति हरिं सोऽधमर्णयति ॥

जो प्रबल अनुराग से श्रीवृन्दावन के गुणों को वर्णन करता है एवं सुनता है, वह श्रीहरि को ही ऋणी करता है ।

[५९]

राधापतिरतिरञ्जितनिकुञ्जभवने वने परमे ।
श्रीवृन्दावननाम्नि प्रणय प्रणयं समस्तगुणसीम्नि ॥

समस्त गुणों की खान श्रीवृन्दावन नामक इस परम (श्रेष्ठ) वन में श्रीराधापति के रतिरञ्जित निकुञ्ज भवन में प्रीति स्थापन कर ॥५९॥

[६०]

यदि वृन्दाबन विन्दाम्यपि तृणतान्ते अनान्तेषु ।
न तदा विकुण्ठलक्ष्मीमपि करमिलितां निभालये ललिताम् ।

हे वृन्दाबन ! यदि तुम्हारे बन में तृण बन कर भी रह सकूं, तो हाथ पै रखी सुललित वैकुण्ठलक्ष्मी को भी मैं आंख उठाकर नहीं देखूं ॥६०॥

[६१]

सर्वदुखदशा घोरा वरं वृन्दाबनेऽस्तु मे ।
प्राकृताऽप्राकृताऽशेषविभूति रपि नान्यतः ॥

श्रीवृन्दाबन में मेरी घोरतर दुख दशा भले हो जाय, फिर भी अन्यत्र प्राकृत एवं अप्राकृत समस्त ऐश्वर्यों को मैं नहीं चाहता ॥६१॥

[६२]

कुर्वत्स्यपि महारौद्रमुपद्रव मनुक्षणम् ।
भक्ति वृन्दाटवीसत्त्वे तत्त्वेक्षातः सदाऽस्तु मे ।

श्रीवृन्दाबन के प्राणी यदि हर क्षण मेरे लिये महा घोर उपद्रव भी करें, तोभी तत्त्व की ओर देखते हुए मेरी उनके प्रति सदा भक्ति बनी रहे ॥६२॥

[६३]

समस्त पुरुषार्थाणां चिन्तामणय एव ते ।
श्रीशादिमृग्य संस्पर्शा ये वृन्दाबनखर्पराः ॥

श्रीवृन्दावन के चोर भी सर्वपुरुषार्थ-चिन्तामणि स्वरूप हैं एवं लक्ष्मी, विष्णु आदि देवतागण भी उन्हें स्पर्श करने की (पाने की) इच्छा करते हैं ॥६३॥

[६४]

पशुरेकः खग एकस्तृणमेकं रेणुरेको वा ।
श्यामरसाद्भुतवन्ये वृन्दारण्ये भवाम्यहं धन्यः ॥

श्यामरसमय अद्भुत बनों युक्त श्रीवृन्दावन में एक पशु, एक पत्ती, एक तृण अथवा एक रजकणा होकर भी मैं कृतार्थ हो जाऊंगा ॥

[६५]

राधामुरलीमनोहरचरणविलासेन धन्यायाम् ।
वृन्दावनभुवि मन्ये परमपुमर्थो मनागपि प्रणयः ॥

श्रीराधामुरलीमनोहर के चरणविलास से धन्य हुई इस श्रीवृन्दावन भूमि में यदि किञ्चिन्मात्र भी प्रीति हो तो मैं उसे ही परम पुरुषार्थ मानता हूं ॥६५॥

[६६]

श्रीवृन्दाविपिनेऽतिकौतुकभरात्तौ पर्य्यटन्तौ महा-
श्चर्य श्रोत्ररसायणातिमधुरान्योऽन्यप्रणादोदये ।
अन्योन्याधिकरम्यवस्तुसुचमत्कारं सदा राधिका-
कृष्णौ ध्यायत पश्य पश्य शृणु शृणिवत्यादृतोक्ती मिथः ॥

वे श्रीयुगलकिशोर अति कौतुकवश श्रीवृन्दावन में घूम रहे हैं—महाश्चर्यमय कर्णरसायन अति मधुर परस्पर सुन्दर वाणी बोलते हैं; एक दूसरे को अधिक रमणीय वस्तु की सुचमत्कारता दिखाते हैं एवं "देखो !" "देखो !!" "सुनो !" "सुनो !!" इस प्रकार प्रीतिपूर्वक कहते हैं—मैं श्रीराधाकृष्ण के इस स्वरूप का ध्यान करता हूँ ॥६६।

[६७]

कृष्णानुरागस्य परं प्रकर्षं तद्रूप शोभाद्युतिभूमसीम ।
श्रीराधिकायाः परमाधिक-श्रिश्रयाम वृन्दावनमेकधाम ॥

श्रीकृष्णानुराग की परम पराकाष्ठा प्राप्त एवं उनके रूप-शोभादि से परम कान्तियुक्त तथा श्रीराधिका के परम अधिक सौन्दर्य से मण्डित मुख्यधाम श्रीवृन्दाबन का ही मैं ने आश्रय कर लिया है ॥६७॥ [६८]

वृन्दाटवीमोहनकुञ्जपुञ्जे कलिन्दकन्यापुलिनैकसीम्नि ।
श्रीराधिकाकृष्णपदारविन्ददास्यैकदास्ये बलतां ममाशा ॥

श्रीयमुना पुलिन में श्रीवृन्दाबन की मोहिनी कुञ्जों में श्रीराधाकृष्ण के चरणकमलों के एकमात्र दास्य भाव में मेरी आशा वृद्धि हो ॥६८॥ [६९]

सहैव राधामुरलीमनोहरौ कन्दर्पलीलामयदिव्यमूर्ती ।
वृन्दाटवीमञ्जुलकुञ्जमण्डले कस्यास्ति नाशाऽतिरसानुसेवितुम् ॥

श्रीवृन्दाटवी के मञ्जुल कुञ्जमण्डल में कन्दर्पलीलामय दिव्यमूर्त्ति श्रीराधामुरलीमनोहर की एकसाथ ही सेवा करने के लिये किस की परम रसमयी आशा नहीं होती ? ॥६९॥

[७०]

आशाऽपि नासाद्यत एव राधापादारविन्दार्च्चन इन्दिराद्यैः ।
अहन्तु वृन्दाबन ! ते प्रभावाद्भावानुबन्धे स्पृहयालु रस्मि ॥

लक्ष्मी आदि देवीगण भी श्रीराधा के चरणकमलों की सेवाकी आशा तक भी नही कर सकतीं, किन्तु मैं हे वृन्दाबन ! आपके प्रभाव से किसी भी भाव-योग से प्रबल इच्छुक हो रहा हूँ ॥७०॥ [७१]

विहाय वृन्दाबनमिन्दिरादिभिः सुदुर्लभं कुत्र विमूढ यासि रे !
सर्वेश्वरैश्वर्यमथाऽमृतं परं सुदुर्लभाश्चात्र मिलन्ति भक्तयः ॥

हे विमूढ ! लक्ष्मी आदि के लिये भी सुदुर्लभ इस श्रीवृन्दाबन को त्यागकर कहां जाता है ? यहां ही तो

सर्वाधीश्वर का ऐश्वर्य, परम अमृत एवं सुदुर्लभ भक्ति समूह मिलते हैं ॥७१॥

[७२]

हरि हरि हरिराधामङ्ग रानङ्गरङ्ग
मधुर मधुर सान्द्रानन्दसिन्धुतरङ्गम् ।
क इह विशतु वृन्दाकानने कुञ्जपुञ्ज
स्फुरदुरु निजरूपाद्यन्तरेणान्तरेऽपि ॥

हरि ! हरि !! (आश्चर्य में) श्रीहरि तथा श्रीराधा की नित्यस्थायी कामरङ्गमय, मधुरातिमधुर आनन्दघन उच्च तरङ्गों-युक्त इस श्रीवृन्दाबन की कुञ्जों के भीतर आपके (वृन्दाबन के) बहुविध रूपादिकी स्फूर्त्तिके बिना भी कोई प्रवेश करसकता है?

[७३]

राधाकृष्णविचित्रमन्मथकलानन्दाश्चमत्कुर्वते
यस्मिन् सौख्यचमत्कृतिः परतरा यत्रत्य दीक्षादितः ।
तद्द्वन्द्वे ममकारतोऽद्भुततमाद् यस्याद्भुतानुक्षणो-
ल्लासाः श्रीवनराजसीम सुमहाभावन्तमेव स्तुमः ॥

जहां श्रीराधाकृष्ण का विचित्र काम-कलासमूह आनंद-राशि की चमत्कारता विधान करता है, जहां (निवास करने की निष्ठारूप) दीक्षादि लेने से परमसुख की चमत्कारता प्राप्त होती है और वहां श्रीयुगलकिशोर में जिसको परम अद्भुत ममताबुद्धिवश प्रतिक्षण ही उल्लास होता है, उस श्रीवृन्दाबन सीमा में रहने वाले अति सुमहा-उदार पुरुष की मैं स्तुति करता हूँ ॥७३॥

[७४]

कलिन्दतनयातटीस्फुरदुदारवल्लीकुटी-
विहारी रतिलम्पटीभवदनुक्षणं धाम तत् ।

द्वयं कनकचम्पकं कुवलयञ्च निन्दद्र ुचा
सुचारुपरिचर्यया मनसि तोषयेत् स्वात्मभूः ॥

श्रीयमुना-तटवर्त्ती सुमनोहर लताकुटी में विहार करने वाले प्रतिक्षण ही रतिलम्पट जो श्रीयुगलकिशोर हैं, जो अपनी कान्ति से स्वर्णचम्पक एवं नीलकमल को भी तिरस्कार करते हैं—उनके मन को सुन्दर परिचर्या से कामदेव ही तुष्ट कर सकता है ।।७४।।

[७५]

स्मर स्मरवशं गतौ कनकचम्पकेन्दीवर-
द्यु ती नवकिशोरकौ मधुरधामवृन्दावने ।
ययो र्नयनवाग्वपु र्विलसितै श्चमत्कारिभि
र्महामधुरिमाकरै र्मुमुहुरेव धन्यालयः ॥

काम के वशीभूत स्वर्णचम्पक एवं नीलकमलवत् द्युति वाले, मधुर श्रीवृन्दावन में विराजमान नवीन श्रीयुगलकिशोर को स्मरण कर, जिनके नेत्र, वाक्य एवं देह-विलासादि के चमत्कारी महा-माधुर्यसमूह में धन्य सखीगण भी मूर्च्छित हो जाती हैं ।।७५।।

[७६]

तीर्त्वा त्रैगुण्यसिन्धुं जड़मलिनमहादुखसारं समस्तं
संतीर्य ज्योतिरेकार्णवमथभगवल्लोकवृन्दानि पश्य ।
आस्वाद्यास्वाद्य तत्तत् सुखमहह जहद् याहि वृन्दावनाख्यं
सर्वोर्ध्वं धाम तस्मिन्मृगय रसमयीं राधिकाकुञ्जवाटीम् ॥

जड़, मलिन, महादुखसार, समस्त सत्-रज-तमोगुण-मय समुद्र के पार जाकर एवं ज्योतिर्मय महासमुद्र को भी उल्लङ्घन करके श्रीभगवत्-धामों का दर्शन कर; अहो ! वहां के सुख को आस्वादन करते करते श्रीवृन्दावन नामक सब से

ऊंचे धाम में प्रवेश कर एवं श्रीराधिका जी की रसमयी कुञ्जवाटी का अन्वेषण कर ॥७६॥

[७७]

निरवधि हृदि राधाकृष्णकन्दर्पलीला—
वलितललितकुञ्जं मञ्जुवृन्दाबनान्तः ।
अधिवस निजनाथद्वन्द्वसेवास्वजस्रं
चतुरचतुरबुद्धिः प्रेमसौख्याद्भुतर्द्धिः ॥

यदि तू अति सुचतुर एवं प्रेम-सुख की अद्भुत सम्पत्ति-युक्त होना चाहता है, तो निरन्तर हृदयमें मनोहर श्रीवृन्दाबन में श्रीराधाकृष्ण की कन्दर्पलीलामण्डित सुन्दर कुञ्ज में रहकर अपने स्वामी श्रीयुगलकिशोर की निरन्तर सेवा का सुख आस्वादन कर ॥७७॥

[७८]

राधाकृष्णौ नित्यकन्दर्पतृष्णौ संसेवन्ते निर्भरप्रेमपूर्णाः ।
प्रेष्यात्मानः केऽपि तन्मुख्यसख्या श्रीमद्वृन्दारण्यकुञ्जोत्तमेषु ॥

कोई कोई (महाभाग्यवान्) गाढ़ प्रेमभक्तिपूर्ण भक्त, उनकी (श्रीयुगलकिशोर की) मुख्य—सखी (यूथेश्वरी) के साथ श्रीवृन्दाबन की उत्तम उत्तम कुञ्जों में नित्य कामतृष्णामय श्रीराधाकृष्ण की सम्यक प्रकार सेवा करते हैं ॥७८॥

[७९]

किं विद्याकुलशीलरूपविभवैः किं दानयज्ञादिभिः
किं विख्यातिशतैः किमुग्रतपसा किं न्यासयोगादिभिः ।
किं तत्त्वानुभवने विष्णुभजनैः किं तस्य वात्यद्भुते
यो वृन्दाबन-ईशमोहनरसेऽप्यासी न सर्वस्व-धीः ॥

जिसकी इस अति अद्भुत एवं ईश्वर को भी मोहित करने वाले रसमय श्रीवृन्दाबन में सर्वस्व-बुद्धि (श्रीवृन्दावन ही

मेरा सर्वस्व है—ऐसी निष्ठा) नहीं हो सकी तो—उसके विद्या, कुल, शील, रूप एवं सम्पत्ति आदिकों का क्या प्रयोजन ? उसके दान यज्ञादिक का क्या लाभ ? बहुत यश-कीर्ति प्राप्ति का क्या फल ? उग्र तपस्या किंवा सन्न्यास योगादि का क्या प्रयोजन ? यदि उसने तत्वका अनुभव भी करलिया तो क्या? और विष्णु-भजन से ही उसे क्या फल प्राप्त होगा ? ॥७६॥

[८०]

श्रीवृन्दारण्य धन्योऽस्म्यतिपरम महात्वत्कृपा-पात्रितोऽस्मि
यातोऽहं येन दत्तो विधिशुकसनकाद्यर्थनीयः स्ववासः ।
गौरश्यामे महामोहनवरमहसी नित्य-कैशोरवेशे
नित्यैकानङ्गरङ्गे अपि परिचरितुं यन्ममाशाऽपि दत्ता ॥

हे श्रीवृन्दाबन ! मैं धन्य हूँ ! आपके अति महाप्रेम का पात्र हुआ हूँ !! क्योंकि ब्रह्मा, शुकदेव, सनकादि भी जिसके लिये प्रार्थना करते हैं—वह अपना स्थान मुझे (वास करने के लिये) दिया है एवं नित्यकैशोर वेश से भूषित तथा नित्य एकमात्र काम-रङ्ग परायण गौरश्याम महामोहन श्रीयुगल-किशोर की सेवा करने की आशा भी मुझे प्रदान की है ॥८०॥

[८१]

श्रीवृन्दाटवि ! कोटिमातृपरमस्निग्धस्वभावे ! रमे-
शाद्यैर्नित्यविचार्यमानपरमाश्चर्यप्रभावे पदम् ।
स्वं चेल्लोचनगोचरीकृतवती वासं च सर्वोत्तमै
मृग्यं दत्तवती तदा निजजने किंवा विलम्बादिह ॥

हे श्रीवृन्दाटवि ! आप कोटि मातृवत् परम स्निग्ध-स्वभावा हो । आपके परम-आश्चर्यमय प्रभाव को रमा, शिव आदि देवतागण नित्य चिन्तन करते हैं, आप अपने पद

(स्थान) का यदि दर्शन कराती हैं एवं सर्व श्रेष्ठजन भी जिस स्थान की खोज करते हैं—वह वासस्थान भी यदि देती हैं, तो फिर अपने दासों को सेवा दान करने में आप क्यों देर करती हो ? ॥८१॥

[८२]

राधाकृष्णावनधिकसमौ रूपलावण्यलीला–
वैदग्ध्याद्यै र्निरवधि मिथो वर्द्धिगाढ़ानुरागौ ।
सान्द्रानन्दाम्बुधिरसचमत्कारधारां वहन्तौ
वृन्दारण्ये परिचर मुदा नित्य-सत्ताप्रकाशौ ॥

अनधिकसम रूप-लावण्य, लीला-वैदग्धी आदि के द्वारा निरन्तर एक दूसरे का गाढ़ानुराग बढ़ाने वाले, आनन्दघन समुद्र की चमत्कारी रस-धारा बरसाने वाले. नित्य श्रीवृन्दाबन में विराजमान श्रीराधाकृष्ण की आनन्दपूर्वक सेवा कर ॥८२॥

[८३]

अनन्तैश्चिज्ज्योत्स्नारसजलधिपूरै स्ततइतो
वहद्भि र्गौलोकावधिसकलसंप्लावनकरम् ।
अहो सर्वस्योपर्यतिविमलविस्तीर्णमधुर–
स्फुरच्चन्द्रप्रायं स्फुरति मम वृन्दाबनमिदम् ॥

अनन्त चित् ज्योत्स्नामय रससमुद्र का प्रवाह इधर-उधर फैल कर गोलोक से अखिल (विश्व को) संप्लावित कर रहा है। अहो ! यह श्रीवृन्दाबन सबके ऊपर विराजमान होकर अति विमल विशाल मधुर चन्द्र के समान मेरे निकट प्रतिभात होरहा है ॥८३॥

[८४]

प्रलीनैवात्यन्तं त्रिगुणमयमायोदय कथा–
न रेजुः खद्योता इव च हरिलोकाः सुखमयाः ।

किमन्यत् स्वान्यत् स्फुर्त्यखिलसुखभावाभिभवकृत्
स्वभासा सर्वोच्चै र्ज्वलति ननु वृन्दावनमिदम् ॥

त्रिगुणमयी माया-विरचित जगत् की बात तो सर्वथा लुप्त हो चुकी है, सुखमय विष्णुलोक भी खद्योतवत् और नहीं सुहाते; और क्या कहूँ ? अपने सिवा अन्यान्य समस्त धामों के सुखमय भावों को पराजय करने वाला यह श्रीवृन्दाबन ही अपनी कान्ति से अतिशय देदीप्यमान होरहा है ।।८४।।

[८५]

यदि हरिचरणप्रेमानन्दकदम्बं विडम्बयति ।
राधापदरसवन्यं वृन्दारण्यं तदान्यवार्त्ता का ॥

यदि श्रीहरि-चरण के प्रेमानन्दराशि से पूर्ण श्रीराधा पदरसाभिषिक्त बनराज श्रीवृन्दाबन ही विडम्बना (तिरस्कार) करे, तो फिर और क्या कहा जाये ? ।।८५।।

[८६]

अपि मम कोटि भवान्ते भवतु परं तादृशो देहः ।
वृन्दाबन मधिवसतामुच्छिष्टैकस्पृहा भवेद् यत्र ॥

अहो ! करोड़ों जन्मों के पश्चात भी मुझे एक ऐसा शरीर प्राप्त हो, जिसमें मैं श्रीवृन्दाबनवासियों की एकमात्र उच्छिष्ट (झूंटन) ही के लिये स्पृहायुक्त हो सकूं ।।८६।।

[८७]

हरि हरि धिगस्तु मामिह यदति सुतुच्छेषु लोकधर्मेषु ।
अस्वार्थेष्वतिसक्तो विहन्मि वृन्दावनेऽप्यहो वासम् ॥

हरि ! हरि !! मुझे धिकार है !!! क्योंकि अति तुच्छ एवं अपना स्वार्थ (अभीष्ट) विनाश करने वाले लोक-धर्मों में अति-आसक्त होकर मैं श्रीवृन्दाबन वास को भी नष्ट कर रहा हूँ ।

[८८]

प्रायश्चित्त मघानां महदपराधे परं शरणम् ।
सकल-स्वधर्ममौलिः पुमर्थमौलिश्च राधिका-विपिनम् ॥

सब पापों का प्रायश्चित—महत्-पुरुषों का अपराध हो जाने पर परम शरण लेने योग्य—समस्त स्वधर्मशिरोमणि एवं पुरुषार्थ-चूड़ामणि केवल श्रीराधिका-विपिन (श्रीवृन्दावन)ही है।

[८६]

अपि तुच्छलोकरञ्जनमासञ्जन मत्र विड्भाण्डे ।
प्रिय ! वृन्दावनजीवन ! जनसङ्गं स्वार्थभञ्जनं मुञ्च ॥

हे प्रिय ! हे वृन्दावन जीवन !! अति तुच्छ लोक-रञ्जन एवं इस विष्ठापात्र शरीर में आसक्ति तथा स्वार्थ-नाशकरने वाले लोगों का सङ्ग त्याग कर ॥८६॥

[६०]

वृन्दावनतृणगुल्माद्यनिशं सच्चिद्रसात्मकं कलयन् ।
प्रणमन्नतिभक्तिभराद् य इह वसेत्तं नमन्त्यहो धन्याः ॥

जो श्रीवृन्दावन के तृण-गुल्मादि का सच्चिदानन्दघन मूर्तिरूप में निशिदिन दर्शन करता है एवं उनको भक्तिपूर्वक निरन्तर प्रणाम करते हुए यहां (श्रीवृन्दावन में) वास करता है, उसको भाग्यवान पुरुष भी नमस्कार करते हैं ॥६०॥

[६१]

श्रीराधायाः शिञ्जन्मणिनूपुरपादविन्यासान् ।
सप्रेम तत्र तत्र स्मृत्योदश्रा वसन्ति तद्वने धन्याः ॥

जहां-तहां श्रीराधा की मणिमय नूपुरों की ध्वनिसंयुक्त चरण-धरन को प्रेमपूर्वक स्मरण करते करते अश्रुपूर्ण नेत्रयुक्त भाग्यवान पुरुष ही श्रीवृन्दावन में वास करते हैं ॥६१॥

[६२]

कृष्णप्रेमसुधारसात्मसकलं वृन्दाबनं तद्गतं
सर्वं स्थास्नु चरिष्णु चिद्घनमथो रूपं तवापीदृशम् ।
तत्वं त्यक्तसमस्तबाह्यकलनो नो लोकधर्मादिके-
ष्वासक्तो वस राधिकापदतले नित्यं स्वतत्त्वे स्थितः ॥

श्रीवृन्दाबन—श्रीकृष्णप्रेम-सुधा रसात्मक है एवं उसके समस्त स्थावर जङ्गम भी चिद्घन हैं, तुम्हारा रूप भी उसी भांति (चिद्घन) है। अतएव तू समस्त वाह्य-दृष्टि त्याग कर एवं लोक-धर्मों में अनासक्त होकर नित्य अपने स्वरूप (राधा-दासी स्वरूप) में स्थित रहकर श्रीराधिका के चरण-तल में निवास कर ॥६२॥

[६३]

राधातत्प्रियचरणाम्बुजपरिचरणातिसद्रसाम्भोधौ ।
मङ्क्त्वा विस्मृतदेहः कदानु वृन्दावने भविष्यामि ॥

श्रीराधा एवं उसके प्रिय श्रीश्यामसुन्दर के पादपद्मों के सेवारूप अति उत्कृष्ट रस-सागर में निमग्न होकर देह-अध्यास भूलकर कब मैं श्रीवृन्दाबन में निवास करूंगा ? ॥६३॥

[६४]

वृन्दावनवसतिहेतो रधर्मकोटिः कुकर्मकोटि र्वा ।
भवतु समस्तं सोढ्वा संसाधयितास्मि कञ्चन स्वार्थम् ॥

श्रीवृन्दाबन वास करने के लिये कोटि अधर्म हों या कोटि कुकर्म हों—समस्त सहन करके मैं कोई (अनिर्वचनीय) स्वार्थ सम्पादन करूंगा ॥६४॥

[६५]

अनन्तस्वयंज्योतिरानन्ददोहाननन्तोल्लसत् कृष्णराधानुरागान् ।
अनन्तेशभूत्या कृताञ्जल्युपेतान् सदा नौमि वृन्दाटवीसर्वभावान् ॥

अनन्त एवं ज्योतिपूर्ण आनन्द दोहन करने वाले, अनन्त भावों से उल्लासपूर्वक श्रीराधाकृष्ण में अनुराग करने वाले एवं अनन्त ईश्वरों की विभूतियां जिनकी अञ्जलि में समाई हुई हैं—ऐसे श्रीवृन्दाबन के समस्त प्राणियों को नित्य नमस्कार करता हूँ ॥६५॥

[६६]

अनन्तेन्दुचिच्चन्द्रिकासिन्धुमग्नानन्तस्वशोभाचमत्कारधारान् ।
अनन्तानुरागै र्हरे र्विह्वलाङ्गान् विहङ्गादिकान्नौमि वृन्दावनस्थान् ॥

अनन्त चन्द्रों की दिव्य—चन्द्रिका के समुद्र में निमग्न, अनन्त चमत्कार समूह की स्वशोभायुक्त एवं श्रीहरि के अनन्त अनुराग में व्याकुल शरीर युक्त—श्रीवृन्दाबन के पक्षी आदिकों को मैं प्रणाम करता हूँ ॥६६॥

[६७]

दिव्यपुष्पपल्लवादिरम्यवल्लिशोभिते
द्वारदेशदिव्यपुष्पतोरणादिचित्रिते ।
अन्तरालिकल्पितातिदिव्यपुष्पतल्पके
दिव्यरत्नदीपराजिसर्वतो विराजिते ॥

दिव्य पुष्प-पल्लवादि एवं रमणीय लताओं से जो शोभित हो रहा है, जिसका द्वार दिव्य पुष्पों के तोरण आदि से सुसज्जित है, जिसके भीतर सखियों द्वारा रचित दिव्य पुष्पों की शय्या एव सर्वत्र दिव्य दिव्य रत्नदीप विराजमान हैं ॥६७॥

[६८]

दिव्यकाव्यनाटकादिपाठशीलशारिका–
कीरवृन्दसुन्दरेऽतिमञ्जुकुञ्जमन्दिरे ।
दिव्यभृङ्गगुञ्जितेन रञ्जितेऽतिमोहने
कोकिलादिकूजितेन पूजितेन गीतिभिः ॥

[९९]

मन्दमन्दशीतशीत-दिव्यगन्धवायुना
जालरन्ध्ररिङ्गिनान्तरङ्गभावसेविते ।
तत्तदिष्टवस्तुवृन्दसन्निवेश लोभने
गौरनीलदम्पतीमनोजविह्वलौ स्मर ॥

जो दिव्य काव्य नाटकादि को पाठ करने वाले शारी-शुकादिकों से सुन्दरतापूर्ण होरहा है, दिव्य मधुकरों की गुञ्जार से मुखरित एवं अत्यन्त सुन्दर होरहा है, जो कोकिलादिकों की ध्वनि से तथा अनेक सङ्गीतों से गूञ्ज रहा है, मृदु मधुर शीतल दिव्य सुगन्धियुक्त वायु रन्ध्रों में से प्रवेश कर जिसकी अन्तरङ्ग भाव से सेवा कररहा है; जो दोनों की प्रिय-वस्तुओं से सुसज्जित होने के कारण लोभनीय होरहा है—ऐसे अति मनोरम कुञ्ज–मन्दिर में काम-विह्वल उन गौर-नील-छबि श्रीयुगलकिशोर को स्मरण कर ॥९८॥ ॥९९॥

[१००]

अदूरे श्रीगोवर्द्धनगिरिवरान् मोहनमहा-
महःसिन्धु विन्दूकृतसकलसच्चिद्रसरुचिः ।
सुधासिन्धोः कोटिमधुरिम् मुधाकारि कणिक-
स्तदन्तः श्रीवृन्दाबन बनमहामण्डनबनम् ॥

श्रीगोवर्द्धन गिरिराज के निकट मोहन महाज्योति-सिन्धु उत्थित होरहा है; उसके सामने सब सच्चिदानन्दमय ज्योतिसमूह विन्दुवत् प्रतीत होते हैं, उसका एक कण सुधा-समुद्र के कोटि माधुर्य को भी हरण करता है; उसके भीतर श्रीवृन्दाबन का महाशोभामय वनराज विराजमान है ॥१००॥

[१०१]

सर्वानन्दरसैकबिन्दुपरमानन्दाम्बुधिस्यन्दनं
सर्वाश्चर्यवनं श्रियोऽपि हृदयाद्याकर्षणश्रीभरम् ।
शुद्धानन्दरसैकसारसुचमत्कारैकधाराकरं
सौरभ्योज्ज्वलताऽच्छतामसृणतामाधुर्यवत्ताऽद्भुतम् ॥

जिसके एक बिन्दु में ही सर्वानन्द-रस भरा हुआ है—ऐसे एक महा आनन्द के समुद्र को प्रवाहित करने वाला, साक्षात् लक्ष्मीदेवी के भी हृदय एवं नेत्रों को आकर्षण करने वाले सौन्दर्य से मण्डित, एवं विशुद्धानन्द-रस के एकमात्र सार की सुचमत्कारी वर्षा करने वाला—सुगन्धि, उज्ज्वलता, स्वच्छता, कोमलता एवं माधुर्य के आधिक्य में सर्वाश्चर्यमय यह श्रीवृन्दाबन अद्भुत है ॥१०१॥

[१०२]

प्रफुल्लदिव्यमल्लिकालवङ्गजातियूथिका-
कदम्बचम्पकावलीस्थलारविन्द-वीथिभिः ।
शिरीष-कुन्द-केतकी कुसुम-किंशुकादिभि
र्मनोज्ञमाधवीलताद्यनन्तपुष्पवल्लिभिः ॥

प्रफुल्लित दिव्य मल्लिका, लवङ्ग, जाति, यूथिका, कदम्ब, अनेक चम्पक एवं स्थलपद्म समूह, शिरीष, कुन्द, केतकी तथा केशू आदि मनोहर माधवीलतादि अनन्त पुष्पलता समूह—

[१०३]

प्रियङ्गुनागकेशरै रशोककर्णिकारकैः
स्फुटातिमुक्तसत्तला-सुवर्णयूथिकादिभिः ।
विचित्रभेदझिण्टिकासुगंधबन्धुजीवकै
र्हयारिकुब्जकादिभिः प्रफुल्लितैर्विचित्रितम् ॥

प्रियङ्गु, नागकेशर, अशोक, कर्णिकार एवं प्रफुल्लित माधवीलता, नव मल्लिका, स्वर्ण-यूथिका आदि नानाविध झिण्टिका, सुगन्ध-बन्धुक पुष्प तथा प्रफुल्लित इत्यादि, कुब्जक आदि पुष्पमयवृक्षों से (यह श्रीवृन्दाबन) सुसज्जित होरहा है।

[१०४]

विचित्रपल्लवोद्‌गमै र्विचित्रपुष्पसम्भृतै-
र्विचित्रपत्रमञ्जरी र्विचित्रगुच्छजालकैः ।
विचित्रसौरभोदयै र्विचित्रसीधुवर्षिभि
र्विचित्ररोचिरुज्ज्वलैः परैश्चशाखिभिर्वृतम् ॥

जिनमें विचित्र पल्लव निकल रहे हैं, जो विचित्र पुष्पों से लदे हुए हैं, जो विचित्र पत्र, मञ्जरी एवं विचित्र गुच्छ-स्तवक-युक्त हैं एवं विचित्र सुगन्धिपूर्ण, विचित्र मधु वर्षणकारी एवं विचित्र कान्तियुक्त हैं—ऐसे उज्ज्वल वृक्षों से (यह श्रीवृन्दाबन) मण्डित है ॥१०४॥

[१०५]

राधाकृष्णरहः कथानुवदनादाश्चर्यमाधुर्यवद्-
ध्वानैः श्रीशुकशारिकाव्यतिकरै रानन्दसर्वस्वदम् ।
कर्णाकर्षि कुहूः कुहूरिति कलालापै र्वृतं कोकिलै-
र्नृत्यन्मत्तमयूरमन्यविहगै श्चानन्दकोलाहलम् ॥

(यह श्रीवृन्दाबन) श्रीराधाकृष्ण की गुप्त कथा पाठ करने के कारण आश्चर्यमय माधुर्यपूर्ण श्रीशुकशारिकाओं की उच्चध्वनि से अत्याधिक आनन्द प्रदाता है, कानों को आनन्द देने वाले "कुहु" "कुहु" का अव्यक्त मधुर आलाप करनेवाली कोकिलाओं से मण्डित है, नृत्य करनेवाले मत्त मयूरों से एवं नानाविध पक्षियों के आनन्द-कोलाहल से मुखरित होरहा है।

[१०६]

तन्मध्ये नवमञ्जुकुञ्जवलयं शोभाविभूत्याऽसमा-
नोर्ध्वं दिव्यविचित्ररत्नलतिकाद्यानन्दपुष्पश्रिया ।
अन्तस्तल्पवरं वरोपकरणै राढ्यसमन्ताद्भवद्
राधामाधवभुक्तभोग्यमखिलानन्दैकसाम्राज्यभूः ॥

उसमें (श्रीवृन्दाबन में) मनोहर कुञ्ज समूह हैं, जो शोभा-सम्पत्ति एवं दिव्य विचित्र रत्नलतिकादिकों की आनन्दमय पुष्प-लक्ष्मी से असमोर्ध्वता को प्राप्त होरहा है और उसमें उत्तम उत्तय उपकरणों से सुसज्जित अति उत्कृष्ट शय्या विद्यमान है एवं चारों ओर श्रीराधामाधव की भोजन एवं भोग्य की वस्तुएं शोभित हैं इस प्रकार सर्वत्र केवल आनन्द का ही साम्राज्य प्रतीत होता है ॥१०६॥

[१०७]

मध्यैतादृशकुञ्जमण्डलमहो कुण्डं महामोहनं
सान्द्रानन्दमहारसामृतभरैः स्वच्छैः सदा सम्भृताम् ।
रत्नाबद्धचतुस्तटी विलसितं सद्रत्नसोपानव-
त्तीर्थे श्रीतटसत्कदम्बकतलच्छायामणीकुट्टीमम् ॥

अहो! इस प्रकार कुञ्जमण्डल के भीतर महामनोहर कुण्ड है जो आनन्दघन महारसरूप निर्मल अमृत (जल) से सदा पूर्ण रहता है; उसके चारों तीर रत्नों से बंधेहुए हैं; घाट भी उत्तमोत्तम रत्नमय सीढ़ियों से मण्डित हैं—उसके किनारे पर कदम्बवृक्ष की छाया छाया पर मणिमय दीवार (जंगला) शोभित है ॥१०७॥

[१०८]

गाधाऽगाधतया तयो रतिमुदं कुर्वत् परप्रेष्ठयो
र्नानादिव्यरसोत्तमानवसरे व्यञ्जत्तयोः प्रीतये ।
आश्चर्यं कमलोत्पलादिकुतुकायोन्मीलयन्मीलयन्
नानारत्नमयच्छटाम्बुधिजलं व्यञ्जन्निकुञ्जादिकम् ॥

परम प्रियतम श्रीयुगलकिशोर को आनन्द देने के लिये उसमें (कुण्ड में) कहीं गम्भीर एवं कहीं थोड़ा जल है, उनकी प्रीति के लिये स्थल स्थल पर अनेक प्रकार के दिव्य रस (पान करने के लिये) विद्यमान हैं; उनके कौतूहल के लिये आश्चर्य-जनक कमल-उत्पलादि भी बारम्बार खुलते एवं मुंदते हैं नाना मणि-कान्तिमय जल में निकुञ्जावलि प्रतिबिम्बित होरही है ॥१०८॥

[१०६]

निर्मर्यादमहासुसौरभचमत्कारै र्विवर्द्धिष्णुभि
र्माधुर्यैश्च पदेपदेऽद्भुततमै रोम्नां मुहुर्हर्षणैः ।
नानारत्नसरोजिनीकुमुदिनीमुख्यै र्महासुन्दरं
कीर्णं पुष्पचयै स्तटक्षितिरुहां स्यन्दै र्मधूनामपि ॥

असीम महासुगन्धि के चमत्कारयुक्त निरन्तर वर्द्धन-शील माधुर्ययुक्त, पद पद पर अद्भुततम रोमाञ्च उदयकारी अनेक प्रकार के रत्नपद्म, कह्लार आदि मुख्य मुख्य पुष्पों से समाकीर्ण एवं महासुन्दर तथा तीर के वृक्षों की मधुधारा से सींचे हुए—॥१०६॥

[११०]

मध्येवारि रतोत्कयोः रसिकयो र्व्यञ्जन् निकुञ्जोत्तमं
यद्वा रत्नमयातिसुन्दरगृहं सर्वालिविस्मापकम् ।

अम्भः सम्भवदेव वाऽथ परितश्चोर्ध्वे तले स्वच्छसद्
रत्नक्षौणिसमीहितोपकरणे दिव्यप्रसूनान्तरे ॥

जल में क्रीड़ा परायण रसिकयुगल की उत्तम निकुञ्ज शोभित हैं; अथवा सखीमण्डली को भी विस्मित करने वाला रत्नमय अति सुन्दर गृह है; मानो वह जल से ही उत्पन्न हुआ है; और चारों दिशाओं में ऊपर नीचे स्वच्छ सुन्दर रत्नभूमि पर अभीष्ट उपकरण (सामग्री) सुसज्जित है एवं भीतर भी दिव्य पुष्पों से पूर्ण होरहा है ॥११०॥

[१११]

महामणिमयोज्ज्वलत्तटचतुष्टयेऽत्युल्लसद्
विचित्रबहुमण्डनाद्भुत महो लतामण्डपे ।
विचित्रबहुपंक्तिकस्फुट कदम्बमुख्याद्भुत-
च्छटामृतमयद्रुमालिसमृद्धिशोभाद्भुतम् ॥

अहो ! महामणिमय उज्ज्वल चारों तटों पर लतामण्डप में विचित्र अलङ्कारों के द्वारा (वह कुण्ड) अत्यन्त आश्चर्य-जनक होरहा है, एवं विचित्र अनेक पंक्तिमय प्रफुल्लित कदम्ब की भांति अद्भुतछटारूप अमृतमय वृक्षों की समृद्धि-शोभा से अद्भुत प्रतीत होरहा है ॥१११॥

[११२]

राधाकृष्णाऽपारकन्दर्पतृष्णासिन्धो वृद्धिं तन्वदत्यन्तमेव ।
अत्याश्चर्यं केलिवैदग्ध्यवृन्दं वृन्दारण्यानन्दिनोः सन्दिशैतत् ॥

(वह कुण्ड) श्रीराधाकृष्ण की कामतृष्णा के अपार सिन्धु की महावृद्धि करता है। (हे कुण्ड !) श्रीवृन्दाबन-विनोदी युगलकिशोर का अत्याश्चर्यमय केलि-वैदग्धिसमूह मुझे (भी) बताओ-दिखाओ—यह मेरी प्रार्थना है ॥११२॥

[११३]

मधुर मधुर गुञ्जन्मञ्जुरोलम्बपुञ्जे
कनककमलिनीनां कानने यत्र राधा।
प्रियमधिगतवक्त्र भ्रान्तिकं पद्मचुम्बे-
ष्वपि निजमुखचुम्बेनाश्वसन्तं जहास ॥

श्रीवृन्दावन में—मधुर मधुर गुञ्जनकारी मनोहर भंवरों से संव्याप्त स्वर्णकमलिनियों के बन में श्रीराधा के मुख (कमल) की भ्रान्ति में कमलों को चुम्बनकारी प्रियतम को श्रीराधा अपने मुख चुम्बन की आश्वासना देते हुए हंसीं।

इति श्रीवृन्दावन महिमामृते श्रीप्रबोधानन्दसरस्वताविरचिते

—— चतुर्थं शतकम् ——

इस प्रकार
श्री प्रबोधानन्द सरस्वती विरचित
श्रीवृन्दावन-महिमामृत का
चतुर्थ शतक
समाप्त
हुआ

श्रीमद्वैष्णव-सिद्धान्त-रत्न संग्रह

का

संक्षिप्त परिचय

१–श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु (चरितांश)
२–श्रीकृष्ण–तत्व
३–शक्ति–तत्व
४–धाम-तत्व एवं परिकर-तत्व
५–श्रीव्रजेन्द्रनन्दन
६–सृष्टि–तत्व
७–श्रीबलराम-तत्व
८–प्रेम–तत्व
९–श्रीराधा-तत्व
१०–गोपी-तत्व
११–जीव-तत्व
१२–पुरुषार्थ
१३–सम्बन्ध–तत्व
१४–अभिधेय–तत्व
१५–प्रयोजन-तत्व
१६–साध्य
१७–साधन
१८–अपराध
१९–साधन भक्ति का प्राण
२०–साधक का भक्ति विकाश-क्रम
२१–साधु-सङ्ग और महत्-कृपा
२२–गुरु-तत्व
२३–साध्य-साधन–तत्व
२४–श्रीश्रीगौरसुन्दर
२५–नाम-माहात्म्य

इन समस्त तत्वों की गवेषणापूर्ण विशद आलोचना की गई है।

न्यौ० २)

—— ——

हमारी प्रकाशित पुस्तकें—

१—भक्त-भाव संग्रह न्यौ० ।≈)

२—श्रीमद्वैष्णव-सिद्धान्त-रत्न संग्रह ,, २)

३—श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्
प्रथम-द्वितीय शतक ,, ॥)

४—श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्
तृतीय-चतुर्थ शतक ,, ॥≈)

एवं तत्कवि
श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद
का
जीवन-चरित्र
(प्रस्तुत ग्रन्थ)

प्राप्ति स्थान—
श्रीश्यामलाल हकीम,
श्रीधाम वृन्दावन ।